मूल्य : ₹ 50

मई 2026

आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

• इस अंक में •

पौष्टिक कुटकी का मूल्यसंवर्धन

सतत कृषि में पशुधन की भूमिका

शुष्क क्षेत्रों हेतु एग्रीवोल्टाइक प्रणाली

मकई रेशम के प्रसंस्करण से रोजगार

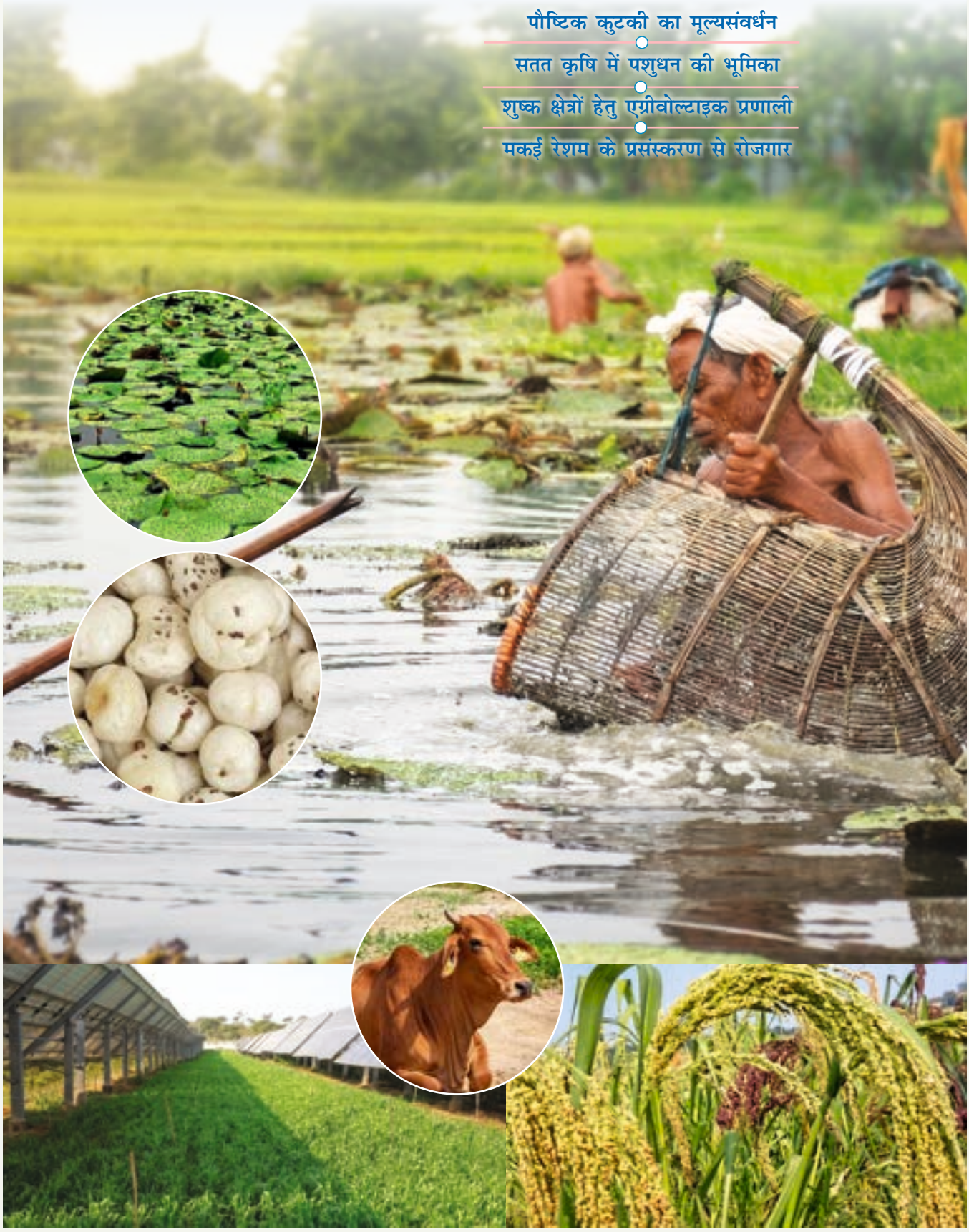

सौर ऊर्जा से स्वचालित मत्स्य आहार एवं ऑक्सीजन प्रबंधन तकनीक

तालाब आधारित मत्स्य पालन में समय पर और समान मात्रा में आहार वितरण तथा जल में पर्याप्त घुलित ऑक्सीजन बनाए रखना उत्पादन वृद्धि के दो प्रमुख आधार हैं। पारंपरिक तरीकों में आहार वितरण प्रायः श्रम आधारित होता है, जिससे समय, लागत और आहार का अपव्यय बढ़ता है तथा कई बार तालाब के सभी भागों तक दाना समान रूप से नहीं पहुंच पाता। इसके अतिरिक्त, ऑक्सीजन की कमी से मछलियों की वृद्धि दर प्रभावित होती है। इन समस्याओं के समाधान के लिए असोम के युवा नवप्रवर्तक श्री जावेद अख्तर बरभुइया द्वारा विकसित सोलर फ्लोट फीडर एयरेटर एक उपयोगी एवं व्यावहारिक तकनीक के रूप में सामने आई है, जो सौर ऊर्जा से संचालित होकर स्वतः आहार वितरण और एयरेशन दोनों कार्य एक साथ करता है।

श्री जावेद अख्तर बरभुइया, ग्राम उजन ग्राम, जिला श्रीभूमि (असोम) के निवासी हैं। वे स्नातक शिक्षित हैं तथा पिछले लगभग 5 वर्षों से मत्स्य पालन से जुड़े नवाचारों पर कार्य कर रहे हैं। स्थानीय मत्स्य पालकों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सौर ऊर्जा आधारित फ्लोटिंग फीडर सह एयरेटर का विकास किया, जो कम लागत में अधिक दक्षता प्रदान करने की दिशा में एक व्यावहारिक प्रयास है।

सोलर फ्लोट फीडर एयरेटर एक तैरने वाला स्वचालित उपकरण है, जो तालाब की सतह पर चलते हुए समान रूप से मछलियों को आहार वितरित करता है तथा साथ ही जल में ऑक्सीजन का स्तर बनाए रखने में सहायक होता है। यह उपकरण 100–200 वॉट क्षमता के सोलर पैनल से संचालित होता है, जो 12 या 24 वोल्ट बैटरी को चार्ज करता है। बैटरी की सहायता से यह प्रणाली कम धूप या रात्रि के समय भी कार्य कर सकती है।

आहार वितरण के लिए इसमें मोटर चालित रोटरी अथवा ऑगर प्रणाली का उपयोग किया गया है, जिससे दाना नियंत्रित मात्रा में तालाब की सतह पर फैलता है। उपकरण में लगभग 20–30 कि.ग्रा. तक आहार रखने की क्षमता है तथा इसका भंडारण पात्र जंगरोधक सामग्री से निर्मित है, जिससे इसकी कार्यक्षमता और टिकाऊपन बढ़ता है। इसकी संरचना ऐसी बनाई गई है कि यह तालाब की सतह पर स्वतः घूमते हुए निर्धारित मार्ग में संचालित रहता है तथा आवश्यकतानुसार प्रारंभिक स्थान पर वापस आ सकता है।

सौरचालित फीडर सह एयरेटर उपरकण

उपयोगिता

यह उपकरण तालाब की सतह पर लगातार गतिशील रहते हुए समान अंतराल पर आहार वितरण करता है। इससे तालाब के विभिन्न हिस्सों में मछलियों तक संतुलित मात्रा में आहार पहुंचता है, जिससे आहार की प्रतिस्पर्धा कम होती है और वृद्धि दर में सुधार होता है। इसके साथ लगे एयरेटर की सहायता से जल में घुलित ऑक्सीजन का स्तर बढ़ता है, जिससे मछलियों का स्वास्थ्य बेहतर रहता है तथा जल की गुणवत्ता संतुलित बनी रहती है।

विशेष रूप से अधिक घनत्व वाले मत्स्य पालन तथा गर्मी के मौसम में, जब जल में ऑक्सीजन का स्तर घटने की आशंका अधिक होती है, यह तकनीक अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

स्मार्ट तकनीक आधारित मत्स्य पालन

लाभ

- तालाब में आहार का समान एवं समयबद्ध वितरण
- श्रम एवं संचालन लागत में कमी
- आहार के अपव्यय में कमी तथा आहार रूपांतरण अनुपात में वृद्धि
- मछलियों की वृद्धि दर एवं उत्पादन में वृद्धि
- एयरेशन से जल में घुलित ऑक्सीजन स्तर रहता है संतुलित
- जल की गुणवत्ता सुधारने में सहायक
- सौर ऊर्जा आधारित होने से विद्युत पर निर्भरता कम
- मछलियों के स्वास्थ्य एवं जीवित रहने की दर में सुधार

यह तकनीक अंतर्स्थलीय मत्स्य पालन क्षेत्र में व्यापक स्तर पर अपनाई जा सकती है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां विद्युत आपूर्ति सीमित है। सौर ऊर्जा आधारित होने के कारण यह पर्यावरण अनुकूल तथा किफायती विकल्प प्रदान करती है। इसके उपयोग से छोटे एवं मध्यम स्तर के मत्स्य पालकों को उत्पादन लागत घटाने और उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिल सकती है।

उपकरण का संचालन अपेक्षाकृत सरल है, इसलिए सामान्य प्रशिक्षण के बाद मत्स्यपालक इसे आसानी से उपयोग में ला सकते हैं। यदि इस तकनीक का क्षेत्रीय स्तर पर प्रदर्शन एवं प्रसार किया जाए, तो इसके व्यापक अपनाने की संभावना है।

वैज्ञानिक पुष्टीकरण

इस नवाचार की प्रभावशीलता को और अधिक प्रमाणित करने के लिए आहार वितरण दक्षता, मछलियों की वृद्धि दर तथा जल गुणवत्ता पर इसके प्रभाव का वैज्ञानिक मूल्यांकन आवश्यक है। विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में परीक्षण के पश्चात इसे राष्ट्रीय स्तर पर अंतर्स्थलीय मत्स्य पालन के लिए उपयोगी तकनीक के रूप में स्थापित किया जा सकता है। ■

(स्रोतः विकसित कृषि संकल्प अभियान संकलन)

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका

वर्ष: 79, अंक: 1, मई 2026

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उपमहानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (कृज्ञाप्रनि)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   संपादक, हिन्दी संपादकीय एकक (कृज्ञाप्रनि)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 500.00
विशेषांक : रु. 200.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

विषय-सूची

निदेशक की कलम से — एल नीनो का प्रभाव: भारतीय कृषि के लिए चुनौती–**अनुराधा अग्रवाल**

4 **श्री अन्न**
पोषण से भरपूर कुटकी का मूल्यसंवर्धन
कमला महाजनी, गौरव धाकड़, योगिता पालीवाल **और** अंकिता पालीवाल

8 **आय**
लाभ से भरपूर मखाना सह मत्स्य पालन प्रणाली
अभिषेक कुमार **और** अभेद पाण्डेय

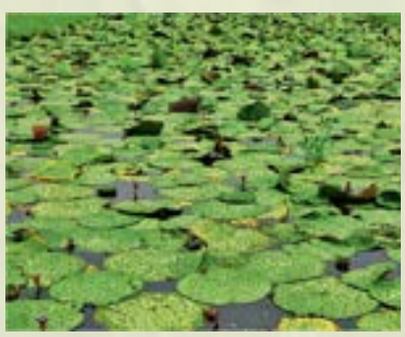

12 **उपयोगिता**
सतत कृषि में पशुधन की भूमिका
जय प्रकाश, रामसागर **और** डी.के. राणा

14 **फार्मर फर्स्ट**
दलहन प्रसंस्करण केन्द्रों से आय संवर्धन
उमा साह, हेमंत कुमार, मनमोहन देव, विकास मौर्या **और** विक्रांत सिंह

17 **स्मार्ट कृषि**
शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों हेतु एग्रीवोल्टाइक प्रणाली
वेद प्रकाश, मोहम्मद आरिफ, अमृत लाल मीणा, जगन सिंह गोरा **और** राघवेन्द्र सिंह

21 **नियंत्रण**
धान में सूत्रकृमियों का प्रबंधन
विकास कुमार आलोरिया, जयंत कुमार महलिक, रूपक जेना, एस.डी. महापात्र **और** सुब्रत पटनायक

विषय-सूची

25 **सुपर फूड**

पोषण से भरपूर माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन

अर्जुन सिंह, रमेश कुमार यादव, सजील अहमद, देवेश कुमार **और** विनय कुमार

27 **आधुनिक**

कृषि में बढ़ता ड्रोन का महत्व

निधि कुमारी, प्रभात कुमार सिंह, दिब्यांशु शेखर, आशीष राय **और** पूजा कुमारी

नवाचार

आवरण II

सौर ऊर्जा से स्वचालित मत्स्य आहार एवं ऑक्सीजन प्रबंधन तकनीक

30 **मूल्य संवर्द्धन**

मकई रेशम का प्रसंस्करण

आकांक्षा सिंह **और** अंजलि वर्मा

33 **कृषि कैलेण्डर**

मई के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, अंजली पटेल, विनय उपाध्याय, एस.एस. राठौर **और** प्रवीण कुमार उपाध्याय

चुनौती

आवरण III

बढ़ती गर्मी और सूखे से कृषि पर गहराता प्रभाव

निदेशक की कलम से

एल नीनो का प्रभाव : भारतीय कृषि के लिए चुनौती

जलवायु परिवर्तन के इस दौर में 'एल नीनो' एक ऐसी प्राकृतिक घटना है, जिसका प्रभाव विश्वभर की मौसम प्रणालियों पर पड़ता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए एल नीनो का असर बेहद महत्वपूर्ण हो जाता है। यह घटना प्रशांत महासागर के सतही जल के असामान्य रूप से गर्म होने से उत्पन्न होती है। जिसके कारण मानसून की प्रकृति प्रभावित होती है। भारत में लगभग आधी कृषि वर्षा पर निर्भर है। यहां एल नीनो किसानों के लिए गंभीर चिंता का विषय बन जाता है। धान, मक्का, दालें और तिलहन जैसी फसलें जो अधिकतर बारिश पर निर्भर करती हैं, सबसे अधिक प्रभावित होती हैं।

एल नीनो एक मौसमी घटना है जिसमें प्रशांत महासागर का तापमान बढ़ जाता है। इससे भारत में कमजोर मानसून और सूखे जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो कृषि को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। इसके कारण खरीफ फसलों (सोयाबीन, कपास, धान) की बुआई में देरी, उत्पादन में 15 से 50 प्रतिशत तक कमी और चारे की कमी से पशुधन पर असर और फसलों पर कीटों के प्रकोप बढ़ सकते हैं।

एल नीनो के प्रभाव से भारत में दक्षिण-पश्चिम मानसून सामान्य से कम रहता है। इससे वर्षा आधारित खेती पर सबसे ज्यादा बुरा असर होता है। वहीं सोयाबीन, कपास, अरहर और धान जैसी फसलों की बुआई प्रभावित होती है और पैदावार में भारी कमी आती है। सूखे जैसी स्थिति के कारण जलाशयों में पानी की कमी से सिंचाई के लिए पानी की तंगी हो जाती है। चारे और पानी की कमी से पशुओं का स्वास्थ्य प्रभावित होता है जिससे दूध और मांस का उत्पादन कम हो जाता है। गर्म और शुष्क मौसम से फसलों में कीटों और रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है, जिससे फसल की गुणवत्ता और उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। फसल खराब होने से किसानों को भारी आर्थिक नुकसान होता है। इसके अलावा छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह स्थिति और भी कठिन हो जाती है, क्योंकि उनके पास पर्याप्त संसाधन नहीं होते हैं।

इन चुनौतियों से निपटने के लिए हमें कृषि क्षेत्र में समग्र और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। इसके अंतर्गत सूखारोधी फसलों को अपनाना होगा और जल संरक्षण तकनीकों जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई को बढ़ावा देना आवश्यक है। किसानों को जागरूक करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम और कृषि परामर्श सेवाओं का विस्तार करना आवश्यक है। साथ ही बदलते मौसम के साथ तालमेल बैठाने के लिए नवाचार, तकनीक और नीति-निर्माण में सुधार अनिवार्य है। उचित कदम उठाकर एल नीनो के प्रभाव की काफी हद तक कम किया जा सकता है और किसानों की आजीविका को सुरक्षित रखा जा सकता है।

किसानों को भी बदलती परिस्थितियों के अनुसार अपनी खेती के तौर-तरीकों में बदलाव लाने की आवश्कयता है। फसल विविधीकरण, कम पानी वाली फसलों का चयन और आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग उन्हें इस चुनौती से निपटने में मदद कर सकता है। सामूहिक प्रयासों और जागरूकता से एल नीनो के नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है। इसलिए हमें अपनी कृषि प्रणाली को अधिक लचीला और टिकाऊ बनाना होगा। इसके लिए सरकार, वैज्ञानिक और किसान मिलकर इस चुनौती का सामना करें और कृषि क्षेत्र को सुरक्षित एवं सुदृढ़ बनाएं।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

पोषण से भरपूर कुटकी का मूल्यसंवर्धन

कमला महाजनी[1], गौरव धाकड़[2], योगिता पालीवाल[3] और **अंकिता पालीवाल[4]**

"श्री अन्न लघु अनाजों का एक समूह है, जिन्हें 'पोषक अनाज' के रूप में जाना जाता है। इन्हीं में से एक है लिटिल मिलेट, जिसे हिंदी में कुटकी कहा जाता है, एशिया में लगभग 2700 ईसा पूर्व से उगाई जा रही एक प्राचीन एवं पारंपरिक फसल है। इसके दाने छोटे, गोल तथा हल्के भूरे या क्रीम रंग के होते हैं और इनमें हल्की मिठास पाई जाती है। यह फसल भारत के ग्रामीण एवं आदिवासी समुदायों के पारंपरिक आहार का अभिन्न हिस्सा रही है। हरित क्रांति के दौरान गेहूं और धान जैसी प्रमुख फसलों पर अधिक ध्यान दिए जाने के कारण कुटकी जैसी गुणकारी श्री अन्न फसलों के उत्पादन में कमी आई। जबकि यह फसल कम पानी में भी अच्छी तरह उगने वाली, ताप सहनशील तथा पर्यावरण अनुकूल है, जो वर्तमान जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।"

वर्तमान समय में कुटकी के पोषण एवं स्वास्थ्य लाभों के कारण इसकी लोकप्रियता पुनः बढ़ रही है। इसमें उच्च मात्रा में फाइबर, प्रोटीन, खनिज एवं एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं, जो इसे संतुलित आहार के लिए उपयुक्त बनाते हैं। कुटकी की बुआई खरीफ मौसम में जुलाई तक करना उपयुक्त माना जाता है।

[1]सहायक आचार्य; [2]कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता; [3]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, [4]यंग प्रोफेशनल; खाद्य एवं पोषण विभाग, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर-313001 (राजस्थान)

भारत में कुटकी की खेती मुख्यतः मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, कर्नाटक, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, झारखंड एवं बिहार में की जाती है। भारत, विश्व में श्री अन्न उत्पादन में अग्रणी देश है, जो इस क्षेत्र में इसकी महत्ता को दर्शाता है। कुटकी विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जानी जाती

संतुलित आहार में उपयुक्त कुटकी

है-हिंदी में कुटकी/सांवा, गुजराती में गजरो या कुरी, तमिल में समाई, कन्नड़ में सेम या सेव तथा बंगाली में समा।

इस प्रकार, कुटकी न केवल पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह टिकाऊ कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने वाली एक सशक्त फसल के रूप में उभर रही है।

उत्पादन तकनीक

कुटकी की उन्नत एवं लाभकारी खेती के लिए उपयुक्त किस्मों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। विभिन्न कृषि वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा क्षेत्र विशिष्ट उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, जो स्थानीय जलवायु एवं मृदा परिस्थितियों के अनुरूप बेहतर उत्पादन देती हैं। अत: कृषकों को चाहिए कि वे अपने क्षेत्र के अनुसार उपयुक्त किस्मों का चयन करने हेतु निकटतम कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) या कृषि विशेषज्ञों से परामर्श लें।

उपयुक्त एवं प्रमाणित किस्मों का चयन करने से न केवल अधिक उपज प्राप्त होती है, बल्कि दानों की गुणवत्ता भी बेहतर होती है, जिससे बाजार में अच्छा मूल्य मिल सकता है।

मृदा एवं जलवायु

कुटकी एक कम अवधि एवं कम संसाधन वाली फसल है, जो 400-600 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी उपज प्रदान करती है। इसके लिए हल्की से मध्यम अथवा दोमट मृदा उपयुक्त रहती है। यह मुख्यत: वर्षा आधारित फसल है, इसलिए इसे पहाड़ी एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

बुआई

कुटकी की बुआई खरीफ मौसम में जून-जुलाई के दौरान की जाती है, जबकि कुछ शुष्क क्षेत्रों में इसे रबी मौसम (अक्टूबर-नवंबर) में भी बोया जा सकता है। बीज दर 8-10 कि.ग्रा./हैक्टर रखनी चाहिए तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25-30 सें.मी. उचित रहती है। बुआई से पूर्व बीज को फफूंदनाशी से उपचारित करना रोगों की रोकथाम हेतु लाभकारी होता है।

खरपतवार प्रबंधन

फसल की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए 15-20 दिनों तथा 35-40 दिनों बाद दो बार निराई-गुड़ाई करना उपयुक्त रहता है, जिससे फसल की वृद्धि बेहतर होती है।

सिंचाई प्रबंधन

कुटकी सामान्यत: वर्षा आधारित फसल है, परंतु सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर फूल आने एवं दाना भराव अवस्था में 1-2 सिंचाई देने से उपज में लाभकारी वृद्धि होती है।

रोग एवं कीट प्रबंधन

कुटकी में सामान्यत: रोग एवं कीटों का

कुटकी कुकीज

यह एक पौष्टिक एवं स्वादिष्ट उत्पाद है, जिसे घर पर आसानी से तैयार किया जा सकता है। इसे बनाने के लिए 120 ग्राम कुटकी का आटा, 60 ग्राम चीनी पाउडर, 5 मि.ली. दूध, 60 ग्राम बटर या घी, 1 ग्राम इलायची पाउडर तथा 1 ग्राम बेकिंग पाउडर की आवश्यकता होती है। सबसे पहले एक बर्तन में कुटकी का आटा, बेकिंग पाउडर और इलायची पाउडर को अच्छी तरह मिला लें। दूसरे बर्तन में बटर या घी और चीनी पाउडर को मिलाकर चिकना मिश्रण तैयार करें। इसके बाद इस मिश्रण को आटे में मिलाएं और थोड़ा-थोड़ा दूध डालते हुए मुलायम एवं सधा हुआ आटा गूंध लें। अब तैयार आटे से छोटी-छोटी लोइयां बनाकर उन्हें कुकीज का आकार दें। बेकिंग ट्रे को हल्का चिकना कर लें या उस पर बटर पेपर बिछाकर कुकीज को व्यवस्थित रूप से रखें। ओवन को 180 डिग्री सेल्सियस पर पहले से गर्म कर लें और कुकीज को 12-15 मिनट तक बेक करें। जब कुकीज हल्के सुनहरे रंग की हो जाएं, तो उन्हें बाहर निकालकर ठंडा होने दें। इस प्रकार तैयार कुटकी कुकीज न केवल स्वादिष्ट होती हैं, बल्कि पोषण से भरपूर होने के कारण स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी होती हैं।

पोषण संरचना

लिटिल मिलेट (कुटकी) कुकीज में प्रति 100 ग्राम लगभग 560 किलो कैलोरी ऊर्जा पाई जाती है। इसमें लगभग 70.40 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 9.87 ग्राम प्रोटीन, 36.76 ग्राम वसा तथा 8.02 ग्राम आहार रेशा उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त, यह कैल्शियम (लगभग 107.67 मि.ग्रा.) एवं आयरन (लगभग 11.23 मि.ग्रा.) का भी समृद्ध स्रोत है।

इस प्रकार, कुटकी कुकीज ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज एवं रेशे से भरपूर एक संतुलित एवं पौष्टिक खाद्य उत्पाद है।

सारणी 1. कुटकी एवं प्रमुख अनाजों के पोषण मूल्य का तुलनात्मक विश्लेषण

पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम)	कुटकी	गेहूं	मक्का	धान
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	370	314	372	366
कुल कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	74.7	64.72	64.77	70
प्रोटीन (ग्राम)	10.13	10.59	8.80	7.16
वसा (ग्राम)	4.7	1.47	3.7	1.92
रेशा (ग्राम)	12.5	11.23	12.2	0.6
कैल्शियम (मि.ग्रा.)	17	19.3	9.1	6.9
आयरन (मि.ग्रा.)	9.3	3.8	2.3	0.7

रोग ग्रसित कुटकी का पौधा

प्रकोप कम होता है, फिर भी बीज उपचार एवं फसलचक्र अपनाना उपयोगी रहता है। प्रमुख कीट के रूप में शूट फ्लाई का प्रकोप देखा जाता है। इससे बचाव हेतु मानसून की शुरुआत में समय पर बुआई करना प्रभावी उपाय है।

इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाकर कुटकी की खेती से कम लागत में अच्छी उपज प्राप्त ली जा सकती है।

उत्पादन, लागत एवं लाभ

कुटकी की खेती कम लागत वाली फसलों में शामिल है। इसमें उर्वरकों, सिंचाई तथा रोग-कीट प्रबंधन की आवश्यकता अपेक्षाकृत कम होती है। उचित कृषि प्रबंधन अपनाने पर इससे औसतन 8-12 क्विंटल/हैक्टर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

कुटकी में प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन के माध्यम से किसानों की आय में 30-40 प्रतिशत तक वृद्धि संभव है। वर्तमान में सरकारी मिलेट मिशन एवं पोषण अभियानों के कारण इसकी बाजार मांग तेजी से बढ़ रही है, जिससे किसानों को बेहतर मूल्य मिलने की संभावना बढ़ी है।

मूल्यवर्धित उत्पाद

कुटकी पोषक तत्वों विशेषकर आहार रेशा, आवश्यक अमीनो अम्ल, आयरन एवं एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होने के कारण इसके विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पाद विकसित किए जा रहे हैं। कुटकी से खिचड़ी, दलिया, उपमा, इडली-डोसा मिक्स, आटा, पापड़, चिवड़ा, नूडल्स, पास्ता, कुकीज, एनर्जी बार तथा इंस्टेंट मिक्स जैसे उत्पाद तैयार किए जा रहे हैं।

इन उत्पादों के विकास से कुटकी की शेल्फ लाइफ बढ़ती है, उपभोक्ता स्वीकार्यता में सुधार होता है तथा किसानों को बेहतर बाजार अवसर प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही यह खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करने और सतत कृषि को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

हानिकारक वयस्क अंकुर मक्खी

मूल्यवर्धित उत्पादों के स्वास्थ्य लाभ

कुटकी एक पारंपरिक एवं पौष्टिक अनाज है, जो पकाने में सरल, स्वाद में हल्का तथा पचने में आसान होता है। इसलिए इसे दैनिक आहार में शामिल करना सुविधाजनक और स्वास्थ्यवर्द्धक माना जाता है। इसके अतिरिक्त, कुटकी से तैयार विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद भी पोषण की दृष्टि से अत्यंत लाभकारी होते हैं:

- कुटकी में प्रचुर मात्रा में फेनोलिक यौगिक और फ्लेवोनॉयड्स पाए जाते हैं, जो शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट के रूप में कार्य करते हैं। ये शरीर को ऑक्सीडेटिव तनाव से बचाने के साथ-साथ अनेक दीर्घकालिक रोगों के जोखिम को कम करने में सहायक होते हैं। इसमें उपस्थित गाबा तंत्रिका तंत्र की सुरक्षा में सहायक न्यूरोप्रोटेक्टिव प्रभाव प्रदान करता है।
- कुटकी में उच्च आहार रेशा तथा कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स होने के कारण यह धीरे-धीरे पचती है, जिससे रक्त शर्करा के स्तर का नियंत्रण बना रहता है और मधुमेह प्रबंधन में सहायता मिलती है। इसके साथ ही इसमें उपस्थित मैग्नीशियम इंसुलिन की कार्यक्षमता को बेहतर बनाने में सहायक होता है।
- कुटकी का नियमित सेवन वजन संतुलन बनाए रखने में सहायक होता है। यह लंबे समय तक तृप्ति की भावना बनाए रखती है। इसमें पाया जाने वाला ट्रिप्टोफैन भूख को नियंत्रित करने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त, इसके हृदय-सुरक्षात्मक गुण कोलेस्ट्रॉल एवं ट्राइग्लिसराइड्स के स्तर को नियंत्रित कर हृदय रोगों के जोखिम को कम करते हैं।
- इसके अलावा, कुटकी में उपस्थित एंटीइंफ्लेमेटरी गुण शरीर में सूजन से संबंधित समस्याओं को कम करने में सहायक होते हैं। यह अनाज प्राकृतिक रूप से ग्लूटेन-मुक्त है, इसलिए सीलिएक रोग तथा ग्लूटेन असहिष्णुता से ग्रसित व्यक्तियों के लिए उपयुक्त एवं सुरक्षित आहार विकल्प है।

कुटकी उपमा

सबसे पहले कुटकी को अच्छी तरह धोकर लगभग 20 मिनट तक पानी में भिगो दें। इसके बाद एक पैन में तेल गर्म करें और उसमें राई, करी पत्ता तथा बारीक कटी हरी मिर्च का तड़का लगाएं। अब कटी हुई प्याज डालकर हल्का सुनहरा होने तक भूनें। इसके पश्चात गाजर और बीन्स डालकर लगभग 2 मिनट तक पकाएं। फिर भीगी हुई कुटकी डालकर 1 मिनट तक हल्का भूनें।

अब इसमें निर्धारित मात्रा में पानी और स्वादानुसार नमक मिलाकर अच्छी तरह चलाएं। पैन को ढककर धीमी आंच पर लगभग 10-12 मिनट तक पकने दें। जब पानी सूख जाए, तो गैस बंद कर दें और उपमा को 5 मिनट तक ढककर दम पर रहने दें। इस प्रकार पौष्टिक और स्वादिष्ट कुटकी उपमा तैयार हो जाता है।

अंकुर मक्खी के अंडे

कुटकी का स्वादिष्ट उपमा

गुणकारी कुटकी

लिटिल मिलेट (कुटकी) एक अत्यंत पौष्टिक अनाज है, जिसे 'मिनी न्यूट्रिशन पावर हाउस' कहा जाता है। इसका कार्बन फुटप्रिंट कम तथा ग्लाइसेमिक इंडेक्स निम्न होता है, जिससे यह स्वास्थ्य के साथ-साथ पर्यावरण के लिए भी अनुकूल विकल्प है। कुटकी की 100 ग्राम मात्रा में लगभग 10-13 ग्राम प्रोटीन, 12.5 ग्राम आहार रेशा, 4-7 ग्राम वसा, 74.7 ग्राम कार्बोहाइड्रेट तथा लगभग 370 किलो कैलोरी ऊर्जा पाई जाती है। उच्च रेशा सामग्री के कारण यह पाचन क्रिया को बेहतर बनाती है, लंबे समय तक तृप्ति का एहसास करवाती है तथा वजन नियंत्रण में सहायक होती है। कुटकी में लगभग सभी आवश्यक अमीनो अम्ल पाए जाते हैं, विशेष रूप से सिस्टीन, मेथिओनिन, लायसिन एवं नियासिन, जो शरीर के समुचित विकास एवं चयापचय क्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त, यह आयरन, फॉस्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा बी-विटामिन्स का भी समृद्ध स्रोत है। इस प्रकार, कुटकी न केवल पोषण की दृष्टि से संतुलित आहार प्रदान करती है, बल्कि स्वास्थ्य संवर्धन एवं जीवनशैली संबंधी रोगों की रोकथाम में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

पोषण संरचना

प्रति 100 ग्राम कुटकी उपमा में लगभग 357 किलो कैलोरी ऊर्जा, 67 ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स, 9.7 ग्राम प्रोटीन, 4.5 ग्राम वसा तथा 7.6 ग्राम रेशा पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें लगभग 17 मि.ग्रा. कैल्शियम और 5.6 मि.ग्रा. आयरन भी उपलब्ध होता है, जो इसे एक पौष्टिक एवं संतुलित आहार बनाते हैं।

पर्यावरणीय अनुकूल

कुटकी एक कम संसाधनों में उगाई जाने वाली फसल है, जिसे बहुत कम पानी और न्यूनतम देखभाल की आवश्यकता होती है। इसलिए यह सूखा प्रभावित तथा सीमित जल संसाधनों वाले क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त है। कठिन जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देने की क्षमता के कारण इसे जलवायु स्मार्ट अनाज माना जाता है। वर्तमान शोधों के अनुसार, श्री अन्न का वैश्विक बाजार महत्व तेजी से बढ़ रहा है, क्योंकि ये आर्थिक रूप से लाभकारी होने के साथ-साथ पर्यावरण की दृष्टि से भी टिकाऊ हैं।

संतुलित एवं स्वास्थ्यवर्द्धक

कुटकी, चावल और गेहूं की तुलना में अधिक आहार रेशा तथा सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदान करती है, जिससे आहार अधिक संतुलित और स्वास्थ्यवर्धक बनता है। यह रक्त शर्करा नियंत्रण, हृदय स्वास्थ्य तथा ग्लूटेन असहिष्णुता वाले व्यक्तियों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। कुटकी न केवल एक स्वस्थ आहार का विकल्प है, बल्कि सतत कृषि को बढ़ावा देने में भी सहायक है और इसे पारंपरिक तथा आधुनिक दोनों प्रकार के व्यंजनों में आसानी से शामिल किया जा सकता है।

कुटकी एक पारंपरिक, पौष्टिक एवं पर्यावरण अनुकूल अनाज है, जिसकी उपयोगिता वर्तमान समय में तेजी से बढ़ रही है। इसमें प्रोटीन, आहार रेशा, आयरन, मैग्नीशियम, बी-विटामिन्स तथा एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो इसे एक उच्च पोषण सम्पन्न अनाज बनाते हैं। कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स के कारण यह मधुमेह, हृदय रोग तथा वजन नियंत्रण के लिए विशेष रूप से लाभकारी है।

कुटकी की खेती कम पानी और सीमित संसाधनों में संभव होने के कारण इसे जलवायु स्मार्ट अनाज के रूप में भी मान्यता प्राप्त है। भारत में इसके उत्पादन को बढ़ावा मिलने से किसानों की आय, खाद्य सुरक्षा और पोषण स्तर में सुधार हो रहा है। मूल्य संवर्धन के माध्यम से कुटकी का उपयोग उपमा, रोटी, कुकीज, मिश्रण, पास्ता तथा अन्य उत्पादों के रूप में और भी बढ़ गया है।

कुल मिलाकर, कुटकी एक स्वास्थ्यवर्धक, टिकाऊ और बहुउपयोगी अनाज है, जिसे दैनिक आहार में शामिल करना व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा पर्यावरण दोनों दृष्टियों से अत्यंत लाभकारी है। ■

सारणी 2. कुटकी की राज्यवार विकसित किस्में

राज्य	प्रमुख किस्में
राजस्थान	डीएचएलएम-28-4, एलएमवी-513
मध्य प्रदेश	जेके-4, जेके-8, जेके-36
ओडिशा	ओएलएम-203, ओएलएम-208, ओएलएम-217
आंध्र प्रदेश	ओएलएम-203, जेके-8
तमिलनाडु	पैयूर-2, टीएनएयू-63, सीओ-3, सी-4, के-1, ओएलएम-203, ओएलएम-20
छत्तीसगढ़	जेके-8, बीएल-6, बीएल-4, जेके-36
कर्नाटक	ओएलएम-203, जेके-8
गुजरात	जीवी-2, जीवी-1, ओएलएम-203, जेके-8
महाराष्ट्र	फुले एकादशी, जेके-8, ओएलएम-203

निवेदन

लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं।

हमारा पोर्टल है :
epatrika.icar.org.in

–संपादक

लाभ से भरपूर मखाना सह मत्स्य पालन प्रणाली

अभिषेक कुमार और **अभेद पाण्डेय**

"हाल के वर्षों में मखाना उत्पादन को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में विशेष पहचान मिली है, जिससे किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनने का अवसर प्राप्त हुआ है। भारत सरकार द्वारा मखाना को भौगोलिक संकेतक (जी.आई. टैग) प्रदान किए जाने से इसके व्यावसायिक मूल्य में और वृद्धि हुई है। इसके साथ ही मखाना की खेती को मछली पालन जैसी अन्य गतिविधियों के साथ एकीकृत कर मखाना-सह-मत्स्य पालन मॉडल विकसित किया जा रहा है, जो सतत कृषि तथा जल संसाधनों के बेहतर उपयोग का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। मखाना उत्पादन रोजगार सृजन, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने तथा पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह जल जैव विविधता को बनाए रखने के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन के अनुकूल कृषि प्रणाली के रूप में भी उभर रही है। अत: मखाना खेती भविष्य की टिकाऊ एवं लाभकारी कृषि का एक सशक्त आधार बन सकती है। मखाना को आर्द्रभूमि का 'काला रत्न' भी कहा जाता है।"

मखाना या फॉक्स नट (*यूरियाल फेरोक्स सालिस्ब.*) एक महत्वपूर्ण आर्द्रभूमि जलीय फसल है, जो भारत के पूर्वी राज्यों विशेषकर बिहार, असोम, मणिपुर तथा उत्तर प्रदेश में पारंपरिक रूप से उगाई जाती है। यह निम्फेसी कुल का पौधा है, जो स्थिर एवं उथले जल निकायों जैसे तालाबों और पोखरों में अच्छी तरह विकसित होता है।

मखाना के बीजों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज तत्व तथा औषधीय गुण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जिसके कारण इसका उपयोग खाद्य उत्पादों, आयुर्वेदिक औषधियों तथा न्यूट्रास्युटिकल उत्पादों में निरंतर बढ़ रहा है।

मखाना की खेती मुख्यत: पारंपरिक और वैज्ञानिक विधियों से की जाती है। पारंपरिक पद्धति में स्थानीय ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर फसल उत्पादन किया जाता है, जबकि वैज्ञानिक पद्धति में बीज चयन, पौध संरक्षण, पौधों की उचित दूरी, जल

मत्स्य महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, किशनगंज (बिहार)

प्रबंधन तथा कटाई जैसे तकनीकी पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग से मखाना की उत्पादन क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है।

मखाना के साथ मत्स्य पालन निचले भूभाग वाले किसानों के लिए एक पर्यावरण अनुकूल एवं लाभदायक विकल्प है। मखाना और मछली परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। मखाना फसल के अवशेष जल में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाते हैं, जो प्लवक (प्लैंक्टन) के विकास हेतु पोषण स्रोत का कार्य करते हैं और ये प्लवक मछलियों के आहार के रूप में उपयोगी होते हैं। दूसरी ओर, मछलियां मखाना कीटों के नियंत्रण में सहायक होती हैं तथा उनका अपशिष्ट जैविक खाद के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार मखाना-मत्स्य एकीकृत प्रणाली किसानों की आय बढ़ाने के साथ-साथ संसाधनों के सतत एवं कुशल उपयोग को भी सुनिश्चित करती है।

तालाब से मखाना संग्रहण

मखाना फसल में पुष्पण अवस्था

सारणी: मखाना-मत्स्य एकीकृत प्रणाली में उत्पादन एवं आर्थिक लाभ

घटक	उत्पादन	संभावित आर्थिक लाभ
मछली	2000-3600 कि.ग्रा./हैक्टर	1.5-2.0 लाख रुपये/हैक्टर
मखाना बीज	लगभग 500 कि.ग्रा./हैक्टर	70,000-1.0 लाख रुपये/हैक्टर
पॉप मखाना	लगभग 200 कि.ग्रा./हैक्टर	लगभग 1.5-2.0 लाख रुपये (बाजार मूल्य)

पौधे की संरचना एवं स्वरूप

पत्ती

मखाना की पत्तियां गोलाकार (वृत्ताकार) होती हैं, जो जल की सतह पर तैरती रहती हैं। इनका आकार अत्यंत बड़ा होता है और सामान्यत: इनका व्यास लगभग 1 मीटर या उससे अधिक हो सकता है। पत्तियां ऊपर से हरी तथा नीचे से जामुनी (बैंगनी) रंग की होती हैं। पत्तियों की शिरा प्रणाली स्पष्ट एवं शूलयुक्त होती है।

तना एवं जड़

मखाने का पौधा प्रकंदीय तने से विकसित होता है, जो मिट्टी की सतह के नीचे क्षैतिज रूप से फैला रहता है। इसकी जड़ प्रणाली रेशेदार होती है, जो मिट्टी में अच्छी तरह स्थापित होकर पोषक तत्वों के अवशोषण में सहायक होती है।

फूल

मखाना के पुष्प बैंगनी रंग के होते हैं और दो प्रकार के पाए जाते हैं:

क्लीस्टोगैमस पुष्प: ये पुष्प बंद अवस्था में ही परागण कर लेते हैं और स्वपरागणशील होते हैं।

चैसमोगैमस पुष्प: ये पुष्प खुले रहते हैं और इनमें परपरागण की संभावना रहती है। ये सामान्यत: सायंकाल में खिलते हैं तथा प्रात:काल में बंद हो जाते हैं।

फलन एवं बीज गठन

- मखाना फल स्पंजी संरचना वाला बेरी प्रकार का होता है, जिसमें बीज संलग्न रहते हैं।

फसल विकास चक्र

मखाना का विकास एक पूर्ण वार्षिक कृषि चक्र में चार मुख्य चरणों में विभाजित होता है:

- **बीजारोपण चरण:** यह चरण अक्टूबर-नवंबर में होता है। सामान्यत: केवल नए तालाबों या खेतों में बीजारोपण किया जाता है। पारंपरिक तालाबों में इसकी आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि पिछले वर्ष के बचे हुए बीज प्राकृतिक रूप से तल में उपलब्ध रहते हैं।
- **अंकुरण चरण:** दिसंबर-जनवरी के मध्य बीज अंकुरित होते हैं और पौधे धीरे-धीरे विकसित होकर जल की सतह तक पहुंच जाते हैं।
- **तीव्र वृद्धि चरण:** यह चरण अप्रैल से जून तक चलता है। इसी अवधि में पौधों की तीव्रतम जैविक वृद्धि होती है तथा मई से पुष्पण प्रारंभ हो जाता है। इस समय पौधों को पर्याप्त पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।
- **कटाई चरण:** जुलाई के मध्य तक पुष्पों से फल विकसित होकर परिपक्व हो जाते हैं तथा उनकी कटाई की जाती है। फल की कटाई प्राय: जल में डुबकी लगाकर पारंपरिक विधियों से की जाती है।

उत्पादन क्षेत्र

मखाना पूर्वोत्तर भारत (असोम, मेघालय एवं त्रिपुरा) के विभिन्न भागों तथा उत्तर प्रदेश और ओडिशा के कुछ क्षेत्रों में प्राकृतिक जंगली रूप में पाया जाता है। विशेष रूप से उत्तर बिहार इसका प्रमुख उत्पादन क्षेत्र है, जहां मखाना प्राकृतिक रूप से भी पाया जाता है और नकदी फसल के रूप में इसकी व्यापक खेती की जाती है। उत्तर बिहार के प्रमुख जिलों-किशनगंज, अररिया, पूर्णिया, कटिहार, सुपौल, मधेपुरा, सहरसा, दरभंगा, सीतामढ़ी एवं मधुबनी में मखाना की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। इस प्रकार मखाना उत्तर बिहार का एक महत्वपूर्ण जलीय जैव संसाधन है, जो क्षेत्रीय आजीविका और अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

- फल पकने पर विघटन की प्रक्रिया से बीज बाहर निकलते हैं।
- प्रत्येक फल में औसतन 30-40 बीज होते हैं तथा एक पौधा से लगभग 15-20 फलों का उत्पादन होता है।
- बीज श्लेष्मल आवरण से ढंके रहते हैं, जिसके कारण वे कुछ दिनों तक जल की सतह पर तैरते रहते हैं।
- अत: बीज जलाशय के तल पर बैठ जाते हैं और उपयुक्त परिस्थितियों में अंकुरित हो जाते हैं।

महत्व

- मखाना की खेती जल जमाव वाली भूमि में सफलतापूर्वक की जाती है, जिससे कम उपयोगी भूमि का भी उत्पादक उपयोग संभव होता है।
- इसके बीज कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज तत्व तथा औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं।
- यह फसल जैव विविधता संरक्षण, पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने तथा स्थानीय आजीविका सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

ग्रामीण आजीविका में अहम योगदान

लाभकारी प्रणाली

मखाना एवं मछली पालन का एकीकृत मॉडल जल संसाधनों के सतत उपयोग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रणाली में एक ही जलाशय में मखाना और मछली की संयुक्त खेती की जाती है, जिससे किसानों की आय में वृद्धि के साथ-साथ भूमि और जल का समुचित उपयोग संभव होता है तथा ग्रामीण आजीविका सुदृढ़ होती है। मखाना से प्राप्त पौष्टिक बीज तथा मछली से प्राप्त प्रोटीनयुक्त आहार ग्रामीण क्षेत्रों के पोषण स्तर को बेहतर बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस एकीकृत प्रणाली का एक प्रमुख लाभ यह है कि किसानों को मखाना और मछली दोनों से दोहरी आय का स्रोत प्राप्त होता है। इसके साथ ही एक ही जल स्रोत से दो उत्पाद प्राप्त होने के कारण प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावी उपयोग सुनिश्चित होता है। मखाना एंटीऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर होता है तथा मछली उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन का अच्छा स्रोत है, जिससे यह प्रणाली स्वास्थ्यवर्धक उत्पादों की उपलब्धता भी बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त, यह एक स्थायी एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि प्रणाली है, जिसमें अपेक्षाकृत कम निवेश में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है और जैव विविधता के संरक्षण को भी बढ़ावा मिलता है।

मखाना सह एकीकृत मछली पालन

एकीकृत मछली पालन प्रणाली में मछली पालन को मखाना, धान, बत्तख, मुर्गी या पशुपालन जैसी अन्य कृषि गतिविधियों के साथ समन्वित किया जाता है। यह प्रणाली ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों की आय बढ़ाने, पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम उपयोग को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मखाना सामान्यत: स्थिर जल निकायों जैसे तालाबों में उगाया जाता है, इसलिए इसे मछली पालन के साथ एकीकृत करना अत्यंत लाभकारी माना जाता है।

एकीकरण का महत्व

मखाना के साथ मछली पालन करने से तालाब का द्विगुण उपयोग संभव हो जाता है, जिससे मखाना और मछली दोनों नकदी फसलों के रूप में अतिरिक्त आय प्रदान करते हैं। मखाना फसल के अवशेष मछलियों के लिए आहार तथा जैविक खाद का कार्य करते हैं। मछलियों की सक्रियता से मखाना फसल में लगने वाले कीटों का नियंत्रण होता है तथा ग्रास कार्प जैसी मछलियां खरपतवार नियंत्रण में सहायक होती हैं। इस प्रकार कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त होने के साथ-साथ खेती से जुड़े जोखिम भी कम हो जाते हैं।

एकीकृत प्रणाली के प्रकार

मखाना आधारित एकीकृत प्रणाली विभिन्न रूपों में अपनाई जा सकती है, जैसे मखाना-वायु श्वास मछली प्रणाली (सिंघी एवं मागुर), मखाना-कार्प मछली प्रणाली (कतला, रोहू एवं मृगल), मखाना-धान-मछली त्रिस्तरीय प्रणाली तथा मखाना-बत्तख-मछली प्रणाली। मखाना-बत्तख-मछली प्रणाली में बत्तख की बीट जैविक उर्वरक एवं मछलियों के आहार के रूप में कार्य करती है, जिससे उत्पादन लागत कम होती है और उत्पादकता बढ़ती है।

मखाना-वायु श्वास मछली पालन

मखाना उत्पादन वाले तालाबों में सामान्यत: घुलित ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है, इसलिए सिंघी एवं मागुर जैसी वायु-श्वास मछलियां इस प्रणाली के लिए उपयुक्त रहती हैं। इस प्रणाली से लगभग 1200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर उत्पादन प्राप्त होता है, बेहतर प्रबंधन के अंतर्गत लगभग 3600 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

मखाना-कार्प मछली पालन

कार्प मछलियों को मखाना प्रणाली में शामिल करने से मच्छरों एवं कीटों पर नियंत्रण संभव होता है। ये मछलियां मखाना पौधों पर पनपने वाले कीटों को खा लेती हैं। मखाना पौधों के अपघटन से उत्पन्न पोषक तत्व मछलियों की वृद्धि में सहायक होते हैं तथा मखाना की पत्तियां और जड़ें मछलियों को सुरक्षित आश्रय भी प्रदान करती हैं।

तालाब प्रबंधन

पारंपरिक तालाबों में सामान्यत: पिछले वर्ष के बीज स्वत: अंकुरित होकर पुन: विकसित हो जाते हैं, जबकि मछली तालाबों में पहली बार मखाना लगाने के लिए बीज बोना आवश्यक होता है। मार्च में पौधों का प्रत्यारोपण लगभग 1 मीटर की दूरी पर किया जाता है तथा तालाब के मध्य लगभग 3 मीटर चौड़ा क्षेत्र खाली छोड़ा जाता है, जिसे बांस की सहायता से घेर दिया जाता है, ताकि मखाना की पत्तियां उस क्षेत्र में फैल न सकें। इसके बाद सिंघी, मागुर, रोहू तथा कॉमन कार्प जैसी मछलियों का संचयन लगभग 4000-5000 आंगुलिक प्रति हैक्टर की दर से किया जाता है।

पोषण से भरपूर मखाने

मखाना कटाई

मखाना की कटाई सामान्यत: अगस्त में की जाती है। इस दौरान मछुआरे बीजों को हाथों एवं पैरों की सहायता से कीचड़ से निकालते हैं तथा उन्हें 'गंज' नामक जालीदार टोकरी में भरकर बाहर लाते हैं। इस प्रणाली से लगभग 0.4 हैक्टर क्षेत्र में प्रति वर्ष लगभग 469 कि.ग्रा. मछली उत्पादन तथा लगभग 200 कि.ग्रा. मखाना पॉप उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

कटाई उपरांत प्रसंस्करण

मखाना के बीज सामान्यत: काले रंग के कठोर एवं गोलाकार होते हैं, जिनका व्यास लगभग 15-45 मि.मी. होता है। इनके बाहरी आवरण को पेरिकार्प कहा जाता है तथा भीतर स्टार्चयुक्त एंडोस्पर्म पाया जाता है। प्रसंस्करण के दौरान बीजों को पहले सुखाया जाता है, फिर आकार के अनुसार ग्रेडिंग की जाती है, इसके बाद लगभग 100-120 डिग्री सेल्सियस तापमान पर गर्म कर टेम्परिंग की जाती है और अंतत: लोहे की कड़ाही में भूनकर मखाना पॉप तैयार किए जाते हैं, जिन्हें गुणवत्ता के अनुसार पैक किया जाता है।

बिहार में उपलब्ध संसाधन

बिहार मखाना उत्पादन में अग्रणी राज्य है और यहां प्रचुर जल संसाधनों की उपलब्धता के कारण मखाना-मछली आधारित एकीकृत खेती की व्यापक संभावनाएं हैं। विशेषकर उत्तर बिहार के जल भराव वाले क्षेत्र, तालाब और बाढ़ प्रभावित भूमि इस प्रणाली के लिए उपयुक्त हैं। दरभंगा, मधुबनी, सहरसा, पूर्णिया, सुपौल तथा कटिहार जैसे जिलों में प्राकृतिक जलाशयों की उपलब्धता इस खेती को और सुदृढ़ आधार प्रदान करती है। बिहार देश के कुल मखाना उत्पादन का लगभग 85 प्रतिशत योगदान करता है। मछली पालन के विकास हेतु बिहार मत्स्य संसाधन विकास निगम, राज्य मत्स्य विभाग तथा भाकृअनुप-एम.जी.एफ.आर.आई., मोतिहारी जैसी संस्थान प्रशिक्षण, बीज एवं तकनीकी सहयोग प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना तथा बिहार सरकार की जल-जीवन-हरियाली योजना के अंतर्गत तालाबों के पुनरुद्धार एवं जल संसाधनों के संरक्षण को बढ़ावा दिया जा रहा है।

सतत कृषि में पशुधन की भूमिका

जय प्रकाश[1], रामसागर और **डी.के. राणा[2]**

"सतत कृषि खाद्य उत्पादन की एक ऐसी समग्र पद्धति है, जिसमें खेती के पर्यावरणीय, सामाजिक तथा आर्थिक प्रभावों का संतुलित रूप से ध्यान रखा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भावी पीढ़ियों के लिए संसाधनों का संरक्षण करना है। इस प्रणाली में नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग, फसलचक्र में विविधता तथा पशुधन को कृषि प्रणाली में एकीकृत करने जैसी महत्वपूर्ण पद्धतियां शामिल हैं। सततता को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रकार की पशुपालन प्रथाएं अपनाई जा सकती हैं। इनमें चक्रीय चराई, चरागाह फसल, सिल्वीपास्चर तथा एकीकृत कीट प्रबंधन प्रमुख हैं। प्रत्येक पद्धति के अपने विशिष्ट लाभ एवं सीमाएं होती हैं, इसलिए किसानों को उपलब्ध संसाधनों, जलवायु और उत्पादन लक्ष्यों के अनुसार उपयुक्त प्रणाली का चयन करना चाहिए। पशुधन का समुचित प्रबंधन न केवल कृषि की उत्पादकता बढ़ाता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।"

सतत कृषि प्रणाली में पशुधन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी अक्सर अनदेखी कर दी जाती है। वास्तव में, पशुधन न केवल कृषि उत्पादन का सहायक घटक है, बल्कि यह पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन, स्वास्थ्य और उत्पादकता को बनाए रखने में भी अहम योगदान देता है।

पशु, परागण में सहायक होने के साथ-साथ मृदा के वातन और पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण जैसी महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी सेवाएं प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, वे कीटों एवं रोगों के प्राकृतिक नियंत्रण में सहायक होते हैं, जिससे फसलों की उत्पादकता में सुधार होता है।

[1]विशेषज्ञ; पशुपालन; [2]अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केंद्र नई दिल्ली

उचित प्रबंधन के तहत पशुधन, सतत कृषि प्रणाली का अभिन्न अंग बन सकता है। यह प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य में सुधार तथा स्थानीय स्तर पर खाद्य उत्पादन को सुदृढ़ करने में सहायक होता है। पशुपालन अपनाते समय पशुओं की आवश्यकताओं के साथ-साथ खेत के उद्देश्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है, ताकि एक संतुलित और प्रभावी कृषि प्रणाली विकसित की जा सके।

लाभ

सतत कृषि प्रणाली में पशुपालन के अनेक लाभ हैं, जो पर्यावरणीय, आर्थिक तथा सामाजिक-तीनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। पशुधन विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं प्रदान करता है, जैसे-परागण में सहयोग, मृदा का वातन तथा पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण। ये प्रक्रियाएं मृदा की उर्वरता और संरचना को सुधारती हैं, जिससे फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है।

पशु न केवल खाद्य उत्पाद (दूध, मांस, अंडे) और रेशा (ऊन) प्रदान करते हैं, बल्कि चमड़ा जैसे सह उत्पाद भी उपलब्ध करवाते हैं। इसके अतिरिक्त, पशुधन से किसानों की आय के स्रोतों में विविधता आती है, जिससे कृषि आय अधिक स्थिर और सुरक्षित बनती है।

पुनर्योजी कृषि प्रणालियों में भी पशुधन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चरने वाले पशु अपने अपशिष्ट के माध्यम से मृदा में कार्बनिक पदार्थ और आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाते हैं, जिससे मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है। इसके साथ ही वे मृदा अपरदन

को कम करने तथा जल के अवशोषण को बढ़ाने में सहायक होते हैं। उचित प्रबंधन के अंतर्गत चराई करने वाले पशु कृषि क्षेत्र की जैव विविधता को भी बढ़ावा देते हैं।

इन लाभों के अतिरिक्त, सतत कृषि पद्धतियों में पाले गए पशुओं से प्राप्त उत्पाद मानव स्वास्थ्य के लिए भी बेहद लाभकारी होते हैं। ऐसे पशु उत्पादों में सामान्यत: संतृप्त वसा की मात्रा कम तथा ओमेगा-3 फैटी एसिड की मात्रा अधिक होती है। घास आधारित पशुपालन से प्राप्त दुग्ध एवं उत्पादों में एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा भी अधिक पाई जाती है, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

अत: सतत पशुपालन पद्धतियां औद्योगिक स्तर की पशु पालन प्रणालियों की तुलना में अधिक मानवीय होती हैं। इनमें पशुओं के प्राकृतिक व्यवहार और कल्याण का विशेष ध्यान रखा जाता है।

चुनौतियां और अवसर

सतत कृषि प्रणाली में पशुपालन एक महत्वपूर्ण घटक है, जो खाद्य, रेशा तथा अन्य उपयोगी उत्पादों की आपूर्ति के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादन में भी योगदान देता है। हालांकि इसका समुचित प्रबंधन न किया जाए, तो यह पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए अनेक चुनौतियां भी उत्पन्न कर सकता है।

पशुपालन की प्रमुख चुनौती इसका पर्यावरण पर पड़ने वाला प्रभाव है। पशुओं से उत्पन्न अपशिष्ट वायु और जल प्रदूषण का कारण बन सकते हैं, जबकि अनियंत्रित चराई से वनस्पति को नुकसान पहुंच सकता है। इसके अतिरिक्त, पशुपालन के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होती है, जिससे वनों की कटाई और प्राकृतिक आवासों का ह्रास हो सकता है। पशु

कुक्कुट पालन से पोषण एवं आय

एवं मानव के बीच रोग संचरण की आशंका भी एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है।

इन चुनौतियों के बावजूद, पशुपालन सतत कृषि के लिए अनेक अवसर प्रदान करता है। वैज्ञानिक एवं संतुलित प्रबंधन के माध्यम से पशुपालन के नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, चरागाह आधारित प्रणालियां भूमि की क्षति और अपशिष्ट के केंद्रीकरण को कम करती हैं। पशु कीट नियंत्रण, परागण तथा जैविक खाद के माध्यम से मृदा उर्वरता बढ़ाने में सहायक होते हैं। इस प्रकार, उचित प्रबंधन के साथ पशुपालन सतत कृषि प्रणाली का एक अभिन्न अंग बन सकता है।

सतत कृषि में उपयोगी पशु प्रजातियां

सतत कृषि प्रणाली में विभिन्न पशु प्रजातियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है, जिनमें प्रमुख रूप से मुर्गियां, शूकर, भेड़ तथा मवेशी (गाय एवं भैंस) शामिल हैं। प्रत्येक प्रजाति खेत के पारिस्थितिकी तंत्र को विशिष्ट लाभ प्रदान करती है।

मुर्गियां खेत में पाए जाने वाले कीटों और हानिकारक जीवों को खाकर उनकी संख्या को नियंत्रित करती हैं। इससे रासायनिक

लाभकारी उद्यम है बकरी पालन

कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है। शूकर, पौधों के अवशेषों को उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन में परिवर्तित करने में सक्षम होते हैं तथा मिट्टी को उलट-पुलट कर उसे भुरभुरा बनाते हैं, जिससे जलधारण क्षमता एवं जल निकास में सुधार होता है।

भेड़ें, चरागाह की घास पर प्रभावी ढंग से चरती हैं, जिससे घास का संतुलित विकास बना रहता है और चरागाह स्वस्थ रहता है। वहीं, मवेशी (गाय एवं भैंस) कम गुणवत्ता वाले चारे को उच्च गुणवत्ता वाले दूध एवं अन्य दुग्ध उत्पादों में परिवर्तित करते हैं, जो किसानों के लिए आय का महत्वपूर्ण स्रोत है।

इस प्रकार, विभिन्न पशु प्रजातियों का समन्वित उपयोग कृषि प्रणाली की उत्पादकता और स्थिरता को बढ़ाता है।

सतत कृषि और पशु कल्याण ऐसे महत्वपूर्ण विषय हैं, जिन्हें एकीकृत रूप से समझना और अपनाना आवश्यक है। पशुधन पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने, मृदा उर्वरता को बनाए रखने, प्रदूषण को कम करने तथा मानव के लिए पौष्टिक खाद्य उपलब्ध करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सतत कृषि प्रणाली में पशुओं के उपयोग के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। इसमें उनकी शारीरिक आवश्यकताओं के साथ-साथ मानसिक और व्यावहारिक आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाए। इसके अंतर्गत पशुओं को सुरक्षित आवास, संतुलित एवं पौष्टिक आहार, उचित पशु चिकित्सा सुविधाएं तथा प्राकृतिक व्यवहार को व्यक्त करने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए।

इस प्रकार, उचित प्रबंधन और संतुलित दृष्टिकोण के माध्यम से पशुधन न केवल कृषि की उत्पादकता बढ़ाते हैं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ■

पशुपालन की प्रणालियां

वर्तमान समय में पशु उत्पादन का मुख्य उद्देश्य पर्यावरणीय प्रभावों को न्यूनतम रखते हुए उच्च गुणवत्ता वाले खाद्य उत्पादों का उत्पादन करना है। इसके लिए किसानों द्वारा ऐसी सतत प्रथाओं को अपनाया जा रहा है, जो प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करती हैं तथा पशु कल्याण को बढ़ावा देती हैं। पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए किसान पशु अपशिष्ट (खाद) का उपयोग उर्वरक के रूप में कर रहे हैं। यह फसलों के लिए पोषक तत्वों का उत्कृष्ट स्रोत है और इससे मृदा की संरचना एवं उर्वरता में सुधार होता है। हालांकि, प्रदूषण से बचाव के लिए इसका संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, किसान आच्छादित फसलें और चक्रीय चराई जैसी तकनीकों का उपयोग कर रहे हैं। इससे मृदा स्वास्थ्य में सुधार, जल संरक्षण तथा मृदा अपरदन में कमी आती है। पशु कल्याण भी आधुनिक पशु उत्पादन का एक महत्वपूर्ण पहलू बन गया है। किसान अपने पशुओं के लिए स्वच्छ, विस्तृत एवं आरामदायक आवास, पर्याप्त चरागाह तथा संतुलित आहार उपलब्ध करवाने पर विशेष ध्यान दे रहे हैं। इससे पशुओं का स्वास्थ्य बेहतर होता है और उच्च गुणवत्ता वाले खाद्य उत्पाद प्राप्त होते हैं।

दलहन प्रसंस्करण केन्द्रों से आय संवर्धन

उमा साह, हेमंत कुमार, मनमोहन देव, विकास मौर्या और **विक्रांत सिंह**

"दालें भारतीय आहार के साथ-साथ देश के लाखों लघु एवं सीमांत कृषकों की आजीविका का प्रमुख आधार हैं। किंतु दालों की मूल्य शृंखला लंबी, जटिल एवं बहुस्तरीय होने के कारण कृषकों को उनकी उपज का अपेक्षाकृत कम मूल्य प्राप्त होता है, जबकि उपभोक्ताओं को दालें अधिक कीमत पर खरीदनी पड़ती हैं। भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा संचालित 'फार्मर फर्स्ट' तथा 'आदर्श दलहन ग्राम' परियोजनाओं के अंतर्गत दलहन प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना कर कृषक समितियों को प्रशिक्षित कर आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास किए गए हैं। इन पहलों के माध्यम से कृषकों को मूल्य संवर्धन द्वारा अतिरिक्त आय प्राप्त हो रही है। इसके साथ ही स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण सुविधाओं की उपलब्धता से कटाई उपरांत होने वाली हानि में भी उल्लेखनीय कमी आई है। परियोजना ग्रामों में स्थापित मिनी दाल मिलों के माध्यम से कृषकों ने लगभग 35,000 से 50,000 रुपये तक की अतिरिक्त आय अर्जित की है। यह मॉडल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त करने, युवाओं एवं महिलाओं को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध करवाने तथा किसानों की आय में वृद्धि करने की दिशा में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो रहा है।"

दालें हमारे दैनिक आहार का आवश्यक हिस्सा होने के साथ-साथ देश के लाखों कृषकों, विशेषकर लघु एवं सीमांत किसानों की आजीविका का महत्वपूर्ण आधार हैं।

भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

खेत से उपभोक्ता की थाली तक पहुंचने की प्रक्रिया में दालें अनेक चरणों जैसे-बिचौलियों, बाजारों, प्रसंस्करण इकाइयों, थोक एवं खुदरा व्यापारियों से होकर गुजरती हैं। इस प्रकार दलहनी फसलों की मूल्य शृंखला लंबी, जटिल एवं बहुस्तरीय होती है, जिसमें विभिन्न हितधारकों की भागीदारी रहती है।

प्रत्येक स्तर पर लागत एवं लाभ जुड़ने के कारण दालों की अंतिम कीमत में वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप, जहां उपभोक्ताओं को दालें महंगी मिलती हैं, वहीं कृषकों को अपनी उपज का अपेक्षाकृत कम मूल्य प्राप्त

कृषक समितियों का गठन एवं प्रशिक्षण

भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा संचालित 'आदर्श दलहन ग्राम' परियोजना के अंतर्गत कानपुर देहात जनपद के कांधी एवं कांधी की मड़ैया ग्रामों में दलहन प्रसंस्करण के माध्यम से मूल्य श्रृंखला के सुदृढ़ीकरण हेतु संगठित प्रयास किए गए। इस दिशा में वर्ष 2025 में 15 कृषकों को संगठित कर दो पंजीकृत कृषक समितियों–दलहन कृषक उत्पादक समिति, कांधी तथा सत्यनाम कृषक समिति, कांधी की मड़ैया का गठन सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1860 के अंतर्गत किया गया। कृषक समितियों के सदस्यों की क्षमता निर्माण के उद्देश्य से पांच दिवसीय उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का आयोजन किया गया, जिसमें दलहन प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन तथा आई.आई. पी.आर. मिनी दाल मिल के संचालन एवं रखरखाव से संबंधित व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया गया। प्रशिक्षण के दौरान कृषकों ने अरहर दाल, मूंग दाल एवं बेसन जैसे उत्पादों का प्रसंस्करण कर उनकी पैकेजिंग की तथा संस्थान के कृषि व्यवसाय एवं उद्यमिता विकास केंद्र पर उनका विक्रय भी किया। इस समग्र प्रशिक्षण एवं अनुभव से कृषकों में दलहन प्रसंस्करण आधारित उद्यम स्थापित करने के प्रति रुचि एवं आत्मविश्वास विकसित हुआ, जिससे वे भविष्य में मूल्य संवर्धन के माध्यम से अपनी आय बढ़ाने के लिए प्रेरित हुए।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रभावी मिनी दाल मिल

होता है और उन्हें उपभोक्ता द्वारा चुकाई गई कुल कीमत का लगभग 50–60 प्रतिशत ही मिल पाता है।

देश में दलहनी फसलों की खेती मुख्यत: छोटे एवं सीमांत कृषकों द्वारा की जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में भंडारण एवं प्रसंस्करण की पर्याप्त सुविधाओं के अभाव में अधिकांश कृषक कटाई के तुरंत बाद अपनी उपज बेचने के लिए विवश होते हैं। वे प्राय: स्थानीय व्यापारियों या बिचौलियों के माध्यम से उत्पाद को मंडियों तक पहुंचाते हैं। इसके बाद दालों को थोक व्यापारी एवं कमीशन एजेंट खरीदकर प्रसंस्करण इकाइयों या दाल मिलों तक भेजते हैं, जहां सफाई, छिलाई, टूटाई (स्प्लिटिंग), पॉलिशिंग एवं पैकेजिंग जैसे कार्य किए जाते हैं। प्रसंस्करण के उपरांत दालें पुन: थोक एवं खुदरा बाजारों के माध्यम से बढ़ी हुई कीमतों पर उपभोक्ताओं तक पहुंचती हैं।

कृषकों की आय में वृद्धि तथा मूल्य श्रृंखला में उनकी हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि वे केवल उत्पादन तक सीमित न रहकर एकत्रीकरण, प्राथमिक प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन से जुड़ी गतिविधियों जैसे–छिलका उतारना, टूटाई, पॉलिशिंग, पैकेजिंग, ब्रांडिंग एवं विपणन में भी सक्रिय भागीदारी करें। इसके लिए प्रमुख दलहन उत्पादन क्षेत्रों में स्थान विशिष्ट लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना एक प्रभावी रणनीति सिद्ध हो सकती है।

इसी दिशा में भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा संचालित 'आदर्श दलहन ग्राम' परियोजना के अंतर्गत कानपुर देहात जनपद के चार ग्राम–कांधी, कांधी की मड़ैया, इंगवारा एवं कोरवा में वर्ष 2022–23 से कार्य किया जा रहा है। इन ग्रामों के अधिकांश कृषक लघु एवं सीमांत श्रेणी के हैं, जो पारंपरिक कृषि पद्धतियों पर निर्भर थे और आधुनिक तकनीकों का सीमित उपयोग करते थे, जिससे उनकी उत्पादकता एवं आय दोनों ही सीमित थीं।

पूर्व में ये कृषक अपनी दलहनी उपज को सीधे मंडी या बिचौलियों को बेच देते थे। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए संस्थान द्वारा परियोजना ग्रामों में दलहन प्रसंस्करण केंद्रों की स्थापना करवाई गई, ताकि मूल्य श्रृंखला को सुदृढ़ किया जा सके और किसानों की आय में वृद्धि हो सके।

प्रशिक्षण से कुशलता

ग्रामीण दलहन प्रसंस्करण केंद्रों की स्थापना

'आदर्श दलहन ग्राम' परियोजना के अंतर्गत तथागत दलहन कृषक उत्पादक समिति, कांधी तथा सत्यनाम कृषक समिति, कांधी की मड़ैया (जनपद-कानपुर देहात) को दलहन प्रसंस्करण केंद्र स्थापित करने हेतु आई.आई.पी.आर. मिनी दाल मिल के साथ-साथ प्रसंस्करित उत्पादों के सुरक्षित भंडारण के लिए आवश्यक भंडारण पात्र उपलब्ध करवाए गए। आई.आई.पी.आर. मिनी दाल मिल एक लघु स्तर की इकाई है, जिसे भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा कुटीर एवं ग्रामोद्योग को बढ़ावा देने तथा दलहन प्रसंस्करण में उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से विकसित किया गया है। यह मिल 2.0 एच.पी. के सिंगल-फेज मोटर से संचालित होती है तथा इसकी प्रसंस्करण क्षमता विभिन्न दालों के लिए लगभग 75-125 कि.ग्रा. प्रति घंटा है।

दाल मिल उपलब्ध करवाने के साथ-साथ दोनों समितियों को व्यवसाय स्थापना हेतु आवश्यक पंजीकरण एवं लाइसेंस जैसे-जी.एस.टी. प्रमाणपत्र, उद्यम पंजीकरण तथा खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण लाइसेंस प्राप्त करने में भी सहयोग प्रदान किया गया। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप तथागत दलहन कृषक उत्पादक समिति, कांधी ने दलहन प्रसंस्करण क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति दर्ज की है।

स्थापित ग्रामीण प्रसंस्करण केंद्र न केवल स्थानीय स्तर पर दाल प्रसंस्करण की सुविधा उपलब्ध करवाते हैं, बल्कि परिवहन एवं भंडारण लागत में कमी लाने के साथ-साथ कटाई उपरांत होने वाले नुकसान को भी घटाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। वर्तमान में ये केंद्र सक्रिय रूप से कार्यरत हैं और परियोजना ग्रामों के अतिरिक्त आसपास के क्षेत्रों के कृषकों को भी सुलभ दरों पर प्रसंस्करण सुविधा प्रदान कर रहे हैं। इसके साथ ही उपभोक्ताओं को अपेक्षाकृत कम कीमत पर दालें उपलब्ध हो रही हैं।

ग्रामीण उद्यमिता का नया साधन

पिछले छह महीनों में इन केंद्रों द्वारा अरहर, उड़द, चना, मटर एवं मूंग की लगभग 1416 कि.ग्रा. दाल के विक्रय से 21,379 रुपये की आय अर्जित की गई। इसके अतिरिक्त अन्य कृषकों से 1328 कि.ग्रा. दाल के प्रसंस्करण पर 13,963 रुपये की आय प्रसंस्करण शुल्क के रूप में प्राप्त हुई। समिति के सदस्य दाल प्रसंस्करण से पूर्व सफाई एवं सुखाने जैसी गतिविधियों में भी सक्रिय रूप से भागीदारी निभा रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में दलहन प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना के ये सफल प्रयास किसानों तथा महिला कृषकों को प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन की दिशा में प्रेरित करने वाली एक महत्वपूर्ण एवं सराहनीय पहल सिद्ध हुए हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से कृषकों को दलहन मूल्य श्रृंखला से सीधे जोड़ना संभव हुआ है, जिससे उनकी आय में वृद्धि के साथ-साथ बाजार में उनकी भागीदारी भी सुदृढ़ हुई है।

इसके अतिरिक्त, इस प्रकार के सफल मॉडलों को अन्य दलहन उत्पादक क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से अपनाया जा सकता है। इससे न केवल ग्रामीण युवाओं के लिए स्थानीय स्तर पर रोजगार के नए अवसर सृजित होंगे, बल्कि महिला सशक्तिकरण को भी बढ़ावा मिलेगा। समग्र रूप से, ऐसे प्रयास ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने तथा कृषकों की आय में स्थायी एवं लाभकारी वृद्धि सुनिश्चित करने की दिशा में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं।

फार्मर फर्स्ट परियोजना की प्रभावी भूमिका

भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा संचालित 'फार्मर फर्स्ट' परियोजना के अंतर्गत फतेहपुर जनपद में 15 महिला कृषकों को संगठित कर 'नमामि गंगे महिला कृषक उद्योग समिति, खदरा' का गठन वर्ष 2020 में किया गया। इस समिति का उद्देश्य दलहन प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन के माध्यम से सदस्यों की आय में वृद्धि के साथ-साथ पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना रहा है। समिति की महिला सदस्यों को दलहन प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन पर प्रशिक्षण प्रदान किया गया तथा व्यवसाय संचालन हेतु आवश्यक प्रमाणन एवं लाइसेंस प्राप्त करने में सहयोग दिया गया। समिति द्वारा निर्मित उत्पादों को संस्थान के कृषि व्यवसाय एवं उद्यमिता विकास केंद्र के 'दलहन हाट' विक्रय काउंटर तथा विभिन्न किसान मेलों में प्रदर्शित एवं विक्रय किया गया, जिन्हें उपभोक्ताओं द्वारा सराहा गया। फार्मर फर्स्ट परियोजना के अंतर्गत इस समिति को भी आई.आई.पी.आर. मिनी दाल मिल प्रदान की गई। महिला कृषकों ने इसका सफलतापूर्वक उपयोग करते हुए दलहन प्रसंस्करण आधारित उद्यम स्थापित किया और गेहूं (बायोफोर्टीफाइड प्रजाति डीबीडब्ल्यू 187) का आटा, बेसन, चना दाल, दाल बड़ी एवं मूंग दाल जैसे उत्पादों का उत्पादन एवं विक्रय किया। वर्ष 2024-25 तक लगभग 547.5 कि.ग्रा. प्रसंस्करित एवं मूल्यवर्धित उत्पादों के माध्यम से समिति ने करीब 50,000 रुपये की आय अर्जित की। इस प्रकार स्थापित ग्रामीण दलहन प्रसंस्करण केंद्र धीरे-धीरे क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सुविधा के रूप में अपनी पहचान बना रहे हैं। भविष्य में इन केंद्रों के माध्यम से प्रसंस्करित उत्पादों की मात्रा एवं आय दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि की व्यापक संभावनाएं हैं।

शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों हेतु एग्रीवोल्टाइक प्रणाली

वेद प्रकाश, मोहम्मद आरिफ, अमृत लाल मीणा, जगन सिंह गोरा और **राघवेन्द्र सिंह**

"भारत के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्र कृषि की दृष्टि से अत्यंत चुनौतीपूर्ण हैं। यहां अल्प वर्षा, उच्च तापमान, सीमित जल संसाधन तथा कम उपजाऊ भूमि के कारण किसानों को फसल उत्पादन में अस्थिरता और आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के समाधान हेतु एग्रीवोल्टाइक प्रणाली एक उभरती हुई तकनीक के रूप में सामने आई है, जो कृषि और सौर ऊर्जा उत्पादन को एकीकृत करती है। इस प्रणाली में कृषि भूमि पर सौर पैनलों को इस प्रकार स्थापित किया जाता है कि फसलें और सौर ऊर्जा दोनों का उत्पादन एक साथ किया जा सके। सौर पैनलों की छाया से भूमि की नमी बनी रहती है तथा वाष्पीकरण कम होता है, जिससे जल संरक्षण में सहायता मिलती है। किसान अपनी आवश्यकताओं के लिए बिजली उत्पन्न कर सकते हैं और अतिरिक्त बिजली को ग्रिड में बेचकर अतिरिक्त आय भी अर्जित कर सकते हैं। इस प्रकार एग्रीवोल्टाइक प्रणाली भूमि उपयोग की दक्षता बढ़ाने, सूक्ष्म जलवायु में सुधार करने तथा किसानों को दोहरा लाभ प्रदान करने वाली एक प्रभावशाली तकनीक है। यह टिकाऊ कृषि, ऊर्जा आत्मनिर्भरता और ग्रामीण विकास को सशक्त बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।"

एग्रीवोल्टाइक प्रणाली में अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करने के लिए ऐसी फसलों का चयन आवश्यक होता है, जिनकी ऊंचाई अपेक्षाकृत कम हो, जो आंशिक छायांकन को सहन करने में सक्षम हों तथा जिनकी प्रकाश आवश्यकता कम हो। इसके साथ ही ऊष्मा एवं सूखे के प्रति सहनशील फसलें इस प्रणाली के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त, तेजी से बढ़ने वाली तथा कम अवधि में तैयार होने वाली फसलें मौसमी सौर ऊर्जा उत्पादन के साथ बेहतर सामंजस्य स्थापित करती हैं। वहीं, उच्च मूल्य वाली नकदी फसलों का चयन करने से किसानों की आय में वृद्धि की संभावना

भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ–250110 (उत्तर प्रदेश)

बढ़ जाती है। साथ ही, अधिक वाष्पोत्सर्जन दर वाली फसलें सौर पैनलों को ठंडा रखने में सहायक होती हैं, जिससे ऊर्जा उत्पादन की दक्षता बढ़ती है तथा सौर पैनलों की कार्यक्षमता और आयु में भी सुधार होता है।

समेकित कृषि प्रणाली के साथ सामंजस्य

समेकित कृषि प्रणाली (आईएफएस) के सिद्धांतों के अनुरूप एग्रीवोल्टाइक प्रणाली एक ही भूमि इकाई पर फसल उत्पादन एवं सौर ऊर्जा उत्पादन का प्रभावी समन्वय सुनिश्चित करती है, जिससे संसाधनों के उपयोग की दक्षता बढ़ती है। यह प्रणाली सूक्ष्म जलवायु को संतुलित करने, जल उपयोग दक्षता में सुधार करने तथा जलवायु की चरम परिस्थितियों से फसलों को आंशिक सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त, फसल एवं विद्युत उत्पादन से प्राप्त दोहरे आय स्रोत कृषि जोखिमों को कम करते हुए किसानों की आर्थिक स्थिरता को सुदृढ़ करते हैं तथा बाहरी ऊर्जा आदानों पर निर्भरता घटाते हैं। इस प्रकार कृषि-सौर प्रणाली, आईएफएस की सहनशीलता, दीर्घकालिक स्थिरता तथा संसाधन संरक्षण को बढ़ावा देने के साथ-साथ सतत विकास लक्ष्यों, विशेष रूप से खाद्य सुरक्षा, स्वच्छ ऊर्जा और जलवायु कार्रवाई, में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में भूमिका

एग्रीवोल्टाइक प्रणाली एक अभिनव एवं बहुउद्देशीय दृष्टिकोण के रूप में संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान देती है। यह प्रणाली फसल उत्पादन के साथ सौर ऊर्जा उत्पादन को एकीकृत कर किसानों की आय में वृद्धि करती है, जिससे गरीबी उन्मूलन (एसडीजी-1) तथा खाद्य सुरक्षा (एसडीजी-2) को सुदृढ़ बनाने में सहायता मिलती है।

इसके साथ ही नवीकरणीय एवं स्वच्छ ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा देकर यह प्रणाली जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता को कम करती है और सस्ती एवं स्वच्छ ऊर्जा (एसडीजी-7) के लक्ष्य की प्राप्ति में योगदान देती है। ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा उपलब्धता बढ़ने से रोजगार के अवसरों का सृजन होता है, जिससे सम्मानजनक कार्य और आर्थिक विकास (एसडीजी-8) को भी प्रोत्साहन मिलता है।

नीति समर्थन एवं भावी संभावनाएं

सरकारी योजनाएं एवं प्रोत्साहन

मार्च 2019 में प्रारंभ की गई प्रधानमंत्री किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान (पीएम कुसुम) योजना भारत के कृषि क्षेत्र में नवीकरणीय ऊर्जा को प्रोत्साहित करने की एक प्रमुख एवं महत्वाकांक्षी पहल है। इस योजना के अंतर्गत 0.5 से 2 मेगावाट क्षमता वाले ग्राउंड माउंटेड, ग्रिड संयोजित सौर विद्युत संयंत्रों की स्थापना व्यक्तिगत किसानों, किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओ) तथा सहकारी संस्थाओं द्वारा स्थानीय विद्युत वितरण कंपनियों के सहयोग से की जा रही है। योजना की वित्तीय संरचना के अनुसार कुल परियोजना लागत का लगभग 60 प्रतिशत अनुदान केंद्र सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है, 30 प्रतिशत राशि बैंक ऋण के रूप में उपलब्ध होती है तथा शेष 10 प्रतिशत अंशदान किसान अथवा परियोजना स्वामी द्वारा किया जाता है। इससे न केवल डीजल पर निर्भरता कम होती है, बल्कि अतिरिक्त विद्युत उत्पादन के माध्यम से किसानों की आय में भी वृद्धि होती है। यदि पीएम कुसुम जैसी योजनाओं के दायरे का विस्तार एग्रीवोल्टाइक परियोजनाओं तक किया जाए, तो विशेष रूप से लघु एवं सीमांत किसानों के बीच इस प्रणाली के व्यापक प्रसार की संभावनाएं बढ़ सकती हैं।

सार्वजनिक निजी भागीदारी

एग्रीवोल्टाइक प्रणालियों के प्रभावी विस्तार एवं क्रियान्वयन में सरकारी एजेंसियों, निजी कंपनियों तथा अनुसंधान एवं शैक्षणिक संस्थानों के बीच सार्वजनिक निजी भागीदारी की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। निजी क्षेत्र की सहभागिता से बड़े पैमाने पर निवेश, तकनीकी दक्षता तथा पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं के माध्यम से लागत में कमी संभव है, जबकि अनुसंधान संस्थान क्षेत्र विशिष्ट, फसल अनुकूल तथा जलवायु संवेदनशील समाधान विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

अनुसंधान एवं नवाचार

एग्रीवोल्टाइक प्रणालियों की कार्यक्षमता और स्वीकार्यता बढ़ाने के लिए सतत अनुसंधान एवं नवाचार अत्यंत आवश्यक हैं। अर्ध पारदर्शी अथवा झुकाव समायोज्य सौर पैनलों जैसे उन्नत डिजाइनों के विकास से फसलों तक पहुंचने वाले प्रकाश के बेहतर वितरण तथा ऊर्जा उत्पादन की दक्षता में सुधार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पवनजनित धूल के जमाव जैसी चुनौतियों से निपटने हेतु धूल प्रतिरोधी सौर पैनलों के विकास पर भी अनुसंधान को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

एग्रीवोल्टाइक प्रणाली

- भविष्य में भारत सहित कई देशों में कृषि और नवीकरणीय ऊर्जा के बीच भूमि संसाधनों को लेकर प्रतिस्पर्धा बढ़ सकती है। ऐसे में एग्रीवोल्टाइक प्रणाली, जिसे कृषि-वोल्टीय प्रणाली अथवा 'सौर खेती' भी कहा जाता है, एक उभरती हुई तकनीक है, जिसके माध्यम से किसान अपनी फसलों के उत्पादन के साथ-साथ बिजली का उत्पादन भी कर सकते हैं।
- इस प्रणाली में फोटोवोल्टाइक तकनीक का उपयोग करते हुए कृषि योग्य भूमि पर सौर पैनल स्थापित किए जाते हैं, जिससे एक ही भूमि से दोहरा लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
- इस तकनीक की अवधारणा पहली बार वर्ष 1981 में एडॉल्फ गोएट्जबर्गर और आर्मिन जास्ट्रो द्वारा प्रस्तुत की गई थी। वर्ष 2004 में जापान में इसका प्रोटोटाइप विकसित किया गया और विभिन्न परीक्षणों के बाद वर्ष 2022 में पूर्वी अफ्रीका में इसे व्यावहारिक रूप से लागू किया गया।
- वर्तमान में भारत, अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मनी जैसे देशों में इस तकनीक का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है। हालांकि भारत में यह तकनीक अभी अपने प्रारंभिक चरण में है, फिर भी भविष्य में इसके व्यापक विस्तार की संभावनाएं अत्यंत प्रबल हैं।

इसके अतिरिक्त, भूमि के द्वैध उपयोग, कार्बन उत्सर्जन में कमी तथा जलवायु सहनशीलता में वृद्धि के माध्यम से यह प्रणाली उत्तरदायी उपभोग एवं उत्पादन (एसडीजी-12) तथा जलवायु कार्रवाई (एसडीजी-13) को समर्थन प्रदान करती है। इसके साथ ही सतत भूमि उपयोग एवं जैव विविधता संरक्षण को बढ़ावा देकर यह स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण (एसडीजी-15) में भी सहायक सिद्ध होती है। विभिन्न हितधारकों के बीच सहयोग को प्रोत्साहित करते हुए यह प्रणाली लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु साझेदारी (एसडीजी-17) को भी सशक्त बनाती है।

इस प्रकार एग्रीवोल्टाइक प्रणाली सतत कृषि, स्वच्छ ऊर्जा और पर्यावरण संरक्षण के समन्वय के माध्यम से समग्र सतत विकास की दिशा में एक प्रभावी एवं व्यावहारिक समाधान के रूप में उभर रही है।

चुनौतियां

- **उच्च प्रारंभिक लागत:** एग्रीवोल्टाइक प्रणाली की प्रमुख चुनौतियों में इसकी उच्च प्रारंभिक पूंजीगत लागत शामिल है। सौर पैनल, संरचनात्मक ढांचा, विद्युत उपकरण, बैटरी भंडारण तथा स्थापना पर पर्याप्त निवेश की आवश्यकता होती है। सीमित संसाधनों वाले लघु एवं सीमांत किसानों के लिए, इसके लाभों की जानकारी होने के बावजूद, इस प्रणाली को अपनाना अपेक्षाकृत कठिन हो जाता है।
- **तकनीकी जटिलताएं:** एग्रीवोल्टाइक प्रणाली में सौर पैनलों का झुकाव कोण, ऊंचाई तथा उनके बीच की दूरी का निर्धारण अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। ये कारक ऊर्जा उत्पादन और फसल वृद्धि दोनों को प्रभावित करते हैं। यदि पैनल बहुत नीचे लगाए जाएं, तो कृषि यंत्रों के संचालन में कठिनाई होती है, जबकि अधिक ऊंचाई पर स्थापना से लागत बढ़ जाती है। स्थान-विशिष्ट डिजाइन एवं तकनीकी विशेषज्ञता की कमी भी इसके विस्तार में बाधा बनती है।
- **भूमि स्वामित्व और सामाजिक-आर्थिक बाधाएं:** भारत जैसे देशों में छोटे और बंटवारे वाली जोतों पर इस प्रणाली का कार्यान्वयन अपेक्षाकृत कठिन होता है। सामूहिक भूमि उपयोग या साझा संरचना के विकास के लिए किसानों के बीच सहयोग और विश्वास आवश्यक होता

लाभ

- **भूमि संसाधनों का दोहरा उपयोग:** पारंपरिक खेती में भूमि का उपयोग केवल फसलों के उत्पादन तक सीमित रहता है, जबकि एग्रीवोल्टाइक प्रणाली में एक ही भूमि पर फसल उत्पादन के साथ-साथ सौर ऊर्जा उत्पादन भी संभव होता है। इससे सीमित भूमि संसाधनों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित होता है तथा भूमि की समग्र उत्पादकता में वृद्धि होती है।
- **उत्पादकता में सुधार:** सौर पैनलों से प्राप्त आंशिक छाया के कारण पौधों पर तीव्र धूप और अधिक तापमान का प्रभाव कम पड़ता है। इससे कई फसलों में बेहतर अंकुरण, पुष्पन एवं फलन की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलता है तथा गर्मी और लू से होने वाले नुकसान में भी कमी आती है।
- **जलवायु सहनशील खेती:** एग्रीवोल्टाइक प्रणाली फसलों को तापमान, वर्षा और नमी की अनिश्चितताओं से आंशिक सुरक्षा प्रदान करती है। विशेष रूप से शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में यह प्रणाली किसानों के लिए जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से अनुकूलन का एक प्रभावी साधन सिद्ध हो सकती है।
- **ऊर्जा आत्मनिर्भरता:** खेतों में स्थापित सौर पैनलों के माध्यम से स्थानीय स्तर पर बिजली उत्पादन संभव होता है, जिससे किसानों की ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इसके अतिरिक्त अतिरिक्त बिजली को ग्रिड में बेचकर किसान अतिरिक्त आय भी अर्जित कर सकते हैं। इस प्रकार यह प्रणाली ग्रामीण क्षेत्रों को ऊर्जा आत्मनिर्भर बनाने में सहायक है।
- **पर्यावरण संरक्षण:** सौर ऊर्जा के उपयोग से जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता कम होती है, जिससे प्रदूषण तथा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी आती है। खेती और स्वच्छ ऊर्जा के इस समन्वय से पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है।

सारणी 1. शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में एग्रीवोल्टाइक प्रणाली हेतु उपयुक्त फसलें

उत्पादन परिदृश्य	क्षेत्रीय फसलें	सब्जियां	मसाला एवं औषधीय फसलें
शुष्क क्षेत्र	बाजरा, मोठ, मूंग, ग्वार, तिल	कद्दू, लौकी, तोरई, टिंडा, कचरी	जीरा, धनिया, सौंफ, इसबगोल, अश्वगंधा
अर्द्धशुष्क क्षेत्र	ज्वार, मक्का, अरहर, चना, उड़द	भिंडी, मिर्च, टमाटर, बैंगन, प्याज	हल्दी, अदरक, मेथी, तुलसी, सौंफ

सारणी 2. समेकित कृषि प्रणाली के सिद्धांतों के साथ एग्रीवोल्टाइक प्रणाली का सामंजस्य

समेकित कृषि प्रणाली के सिद्धांत	एग्रीवोल्टाइक प्रणाली के साथ सामंजस्य
उद्यमों का एकीकरण	फसल उत्पादन और सौर ऊर्जा के संयोजन से संसाधनों का बेहतर उपयोग तथा उत्पादन में विविधता सुनिश्चित होती है।
संसाधन उपयोग दक्षता	भूमि उपयोग दक्षता बढ़ती है, जल संरक्षण होता है तथा सौर ऊर्जा के माध्यम से कृषि ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।
स्थिरता एवं जोखिम विविधीकरण	सूक्ष्म जलवायु के चरम प्रभावों में कमी आती है तथा दोहरे आय स्रोतों के माध्यम से कृषि जोखिम घटता है।
बहुउत्पाद प्रणाली	खाद्य, चारा, नवीकरणीय ऊर्जा एवं पारिस्थितिकी सेवाएं उपलब्ध होती हैं तथा कार्बन उत्सर्जन में कमी आती है।
अन्य कृषि प्रणालियों के साथ अनुकूलता	सौर पैनलों के नीचे अंतरफसली खेती और पशु चराई को समर्थन मिलता है।
कृषि सहनशीलता में वृद्धि	जलवायु की चरम परिस्थितियों से सुरक्षा मिलती है तथा दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित होती है।
आर्थिक व्यवहार्यता	फसल और विद्युत उत्पादन से दोहरी आय प्राप्त होती है तथा इनपुट लागत में कमी आती है।
सतत विकास लक्ष्यों में योगदान	एसडीजी-2, एसडीजी-7 और एसडीजी-13 की प्राप्ति में सहायक है।

है, जो हमेशा संभव नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त, भूमि उपयोग नीतियों तथा विद्युत टैरिफ संबंधी नियमों की जटिलता भी इसके प्रसार को प्रभावित करती है।

- **सामाजिक जागरूकता और स्वीकृति:** किसानों के बीच एग्रीवोल्टाइक प्रणाली के प्रति जागरूकता अभी सीमित है। कई किसान इसे केवल ऊर्जा उत्पादन से जुड़ी परियोजना के रूप में देखते हैं और इसे फसल उत्पादन के साथ समन्वित तकनीक के रूप में अपनाने में संकोच करते हैं। प्रशिक्षण, प्रदर्शन इकाइयों तथा विस्तार सेवाओं की कमी भी इसके व्यापक प्रसार में बाधा उत्पन्न करती है।
- **दीर्घकालिक स्थायित्व और पुनर्निवेश:** सौर पैनलों की औसत कार्यशील आयु लगभग 20 से 25 वर्ष होती है। इसके पश्चात पैनलों के प्रतिस्थापन तथा संरचना के रखरखाव के लिए पुन: निवेश की आवश्यकता होती है। यदि किसानों के पास दीर्घकालिक वित्तीय योजना उपलब्ध न हो, तो इस प्रणाली की निरंतरता प्रभावित हो सकती है।
- **पर्यावरणीय और पारिस्थितिक चिंताएं:** बड़े पैमाने पर सौर पैनलों की स्थापना से स्थानीय जैव विविधता पर प्रभाव पड़ने की आशंका रहती है। पैनलों से उत्पन्न छायांकन के कारण भूमि पर उगने वाले कुछ पौधों तथा कीटों के प्राकृतिक आवास में परिवर्तन हो सकता है। यदि संतुलित प्रबंधन न किया जाए, तो यह दीर्घकाल में स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र के लिए चुनौती बन सकता है।

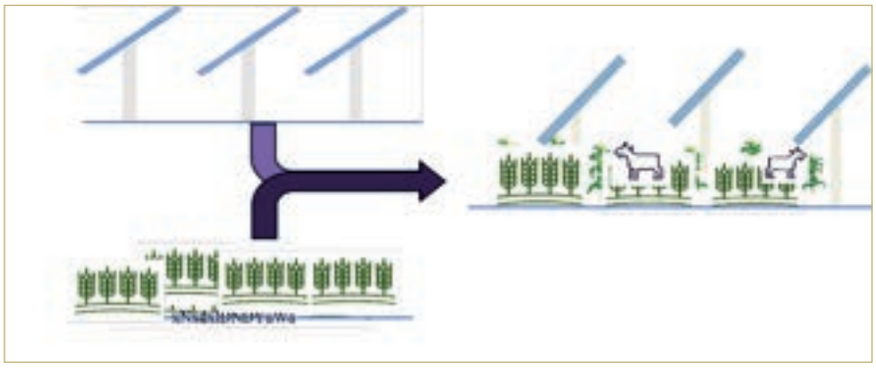

लाभकारी एग्रोवोल्टाइक प्रणाली

एग्रीवोल्टाइक प्रणाली एक उन्नत एवं नवोन्मेषी तकनीक है, जो एक ही भूमि इकाई पर खाद्य उत्पादन और नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन का प्रभावी एकीकरण करती है। इससे किसानों को आर्थिक लाभ के साथ-साथ संसाधनों के समन्वित उपयोग के अतिरिक्त लाभ प्राप्त होते हैं। यह प्रणाली विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है जहां जनसंख्या घनत्व अधिक है, औद्योगिक विकास तीव्र है तथा नवीकरणीय ऊर्जा के विस्तार के साथ कृषि भूमि के संरक्षण की आवश्यकता बढ़ रही है।

सौर पैनलों के कारण उत्पन्न छायांकन सूक्ष्म जलवायु को प्रभावित करता है, जिससे सौर विकिरण, जल संतुलन तथा फसल वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप कुछ परिस्थितियों में उपज में हल्की कमी संभव है, जबकि शुष्क एवं गर्म क्षेत्रों में यही प्रणाली नमी संरक्षण, तापमान नियंत्रण तथा अधिक सौर विकिरण से सुरक्षा प्रदान कर फसल स्थिरता बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती है, विशेष रूप से छाया अनुकूल फसलों के लिए।

यद्यपि अब तक सीमित अध्ययनों में ही फसल उपज एवं गुणवत्ता पर इसके प्रभावों का व्यापक मूल्यांकन किया गया है, फिर भी विभिन्न फसलों, जलवायु परिस्थितियों तथा किस्मों के संदर्भ में विस्तृत अनुसंधान की आवश्यकता है। भविष्य में मॉडलिंग तथा स्थान-विशिष्ट विश्लेषण के माध्यम से इस प्रणाली को क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप अनुकूलित किया जा सकता है। इस प्रकार एग्रीवोल्टाइक प्रणाली जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा मांग, खाद्य सुरक्षा तथा भूमि उपयोग से संबंधित प्रमुख चुनौतियों के समाधान में भविष्य की कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक सिद्ध हो सकती है। ■

सारणी 3. संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों के साथ एग्रीवोल्टाइक प्रणाली का सामंजस्य

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य	एग्रीवोल्टाइक प्रणाली के साथ सामंजस्य
एसडीजी-1 गरीबी उन्मूलन	सौर विद्युत उत्पादन एवं फसल उत्पादन से अतिरिक्त आय उपलब्ध कराकर किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार करता है।
एसडीजी-2 शून्य भूख	भूमि के इष्टतम उपयोग एवं सूक्ष्म जलवायु लाभों के माध्यम से खाद्य सुरक्षा को सुदृढ़ करता है।
एसडीजी-7 सस्ती एवं स्वच्छ ऊर्जा	नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन को सक्षम बनाकर जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता को कम करता है।
एसडीजी-8 गरिमापूर्ण कार्य एवं आर्थिक विकास	सौर ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना एवं रखरखाव के माध्यम से रोजगार सृजन कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करता है।
एसडीजी-9 उद्योग, नवाचार एवं अवसंरचना	पीवी पैनल डिजाइन, स्थापना, कोटिंग तथा रखरखाव से संबंधित अनुसंधान एवं विकास को बढ़ावा देता है।
एसडीजी-12 उत्तरदायी उपभोग एवं उत्पादन	द्वैध भूमि उपयोग को प्रोत्साहित कर पर्यावरणीय प्रभावों को कम करता है।
एसडीजी-13 जलवायु कार्रवाई	कार्बन उत्सर्जन में कमी लाकर तथा जलवायु सहनशीलता को बढ़ाकर जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायक होता है।
एसडीजी-15 स्थल पर जीवन	सतत भूमि उपयोग को बढ़ावा देता है तथा जैव विविधता संरक्षण में योगदान करता है।
एसडीजी-17 लक्ष्यों के लिए साझेदारी	कृषि सौर प्रणाली के अंगीकरण हेतु विभिन्न हितधारकों के बीच सहयोग को प्रोत्साहित करता है।

सूचना

ग्राहकों से निवेदन है कि वे *'खेती'* पत्रिका हेतु अपना चंदा समय से पूर्व भेजने की व्यवस्था करें, ताकि पत्रिका समय पर और लगातार मिलती रहे। यदि आपका पता बदल गया है तो उसकी तुरंत सूचना दें। इसके लिए अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।

व्यवसाय प्रभारी
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा,
नई दिल्ली-110012

धान में सूत्रकृमियों का प्रबंधन

विकास कुमार आलोरिया[1], जयंत कुमार महलिक[1], रूपक जेना[2], एस.डी. महापात्र[2] और सुब्रत पटनायक[3]

धान की फसल में विभिन्न प्रकार के सूत्रकृमि पाए जाते हैं, जो पौधे के विभिन्न भागों को संक्रमित कर उत्पादन तथा गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। पत्ती एवं तना को प्रभावित करने वाले सूत्रकृमि, जैसे सफेद शीर्ष या सिरा सूत्रकृमि *(एफेलेनचोइड्स बेसेई)* तथा तना सूत्रकृमि *(डाइटिलेंकस एंगस्टस)*, पत्तियों और तनों में संक्रमण कर पत्तियों के पीले पड़ने, तनों के कमजोर होने तथा पौधों के झाड़ीदार दिखाई देने जैसी समस्याएं उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत, जड़ों को प्रभावित करने वाले सूत्रकृमि, जैसे जड़गांठ सूत्रकृमि *(मेलोइडोगाइन ग्रैमिनिकोला)*, जड़ सूत्रकृमि (*हिर्शमैनिएला* प्रजातियां) तथा पुट्टी सूत्रकृमि *(हेटेरोडेरा ओरिजिकोला)*, पौधों की वृद्धि तथा पोषक तत्वों के अवशोषण को प्रभावित करते हैं। इन सूत्रकृमियों के प्रभाव को कम करने के लिए प्रतिरोधी किस्मों का चयन, फसलचक्र का पालन, गर्म पानी से बीज उपचार, जैविक एवं रासायनिक नियंत्रण उपाय, गहरी जुताई तथा सहफसली खेती जैसी समन्वित प्रबंधन रणनीतियां प्रभावी सिद्ध होती हैं। प्रस्तुत लेख में इस समस्या की प्रकृति, इसके प्रमुख लक्षणों, नियंत्रण उपायों तथा भारत की विविध कृषि जलवायु परिस्थितियों एवं कृषि प्रणालियों के अनुरूप विकसित समग्र एकीकृत सूत्रकृमि प्रबंधन रणनीतियों का विस्तृत अवलोकन प्रस्तुत किया गया है।

धान *(ओराइजा सैटिवा)* विश्व की सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसलों में से एक है और यह वैश्विक जनसंख्या के आधे से अधिक लोगों का प्रमुख आहार है। इसका उत्पादन मुख्य रूप से एशिया में होता है, जहां विश्व के कुल धान उत्पादन का 90 प्रतिशत से अधिक भाग उत्पादित किया जाता है। धान एक अत्यंत अनुकूलनीय फसल है, जिसकी अनेक किस्में विभिन्न पारिस्थितिक परिस्थितियों और खेती की पद्धतियों के अनुरूप विकसित की गई हैं।

धान की खेती पांच प्रमुख कृषि पारिस्थितिकी तंत्रों में की जाती है। ये पर्यावरणीय परिस्थितियां धान से संबंधित पौध परजीवी सूत्रकृमियों की विविधता तथा उनसे होने वाली क्षति की तीव्रता को प्रभावित करती हैं।

धान से संबंधित अनेक वंशों और प्रजातियों के पौध परजीवी सूत्रकृमि पाए जाते हैं, किंतु इनमें से केवल कुछ ही ऐसे हैं, जो आर्थिक दृष्टि से हानि का कारण बनते हैं। ये सूत्रकृमि विभिन्न प्रकार के परजीवी लक्षण प्रदर्शित करते हैं और पौधों को या तो यांत्रिक क्षति पहुंचाकर अथवा वृद्धि एवं विकास से संबंधित सामान्य शारीरिक प्रक्रियाओं को बाधित करके नुकसान पहुंचाते हैं। परिणामस्वरूप संक्रमित पौधों की वृद्धि कम हो जाती है तथा उपज में कमी आती है।

कुछ सूत्रकृमि प्रजातियां सभी धान उत्पादक क्षेत्रों में पाई जाती हैं, जबकि कुछ केवल विशिष्ट पारिस्थितिक परिस्थितियों तक सीमित रहती हैं। सुविधा की दृष्टि से धान के सूत्रकृमियों को सामान्यत: उनके पोषण व्यवहार के आधार पर दो प्रमुख समूहों में वर्गीकृत किया जाता है। पत्ती परजीवी सूत्रकृमि, जो तनों, पत्तियों एवं शीर्ष कलियों से पोषण प्राप्त कर उन्हें प्रभावित करते हैं तथा जड़ परजीवी सूत्रकृमि, जो जड़ तंत्र को प्रभावित करते हैं।

पौध परजीवी सूत्रकृमि सूक्ष्म जीव होते हैं, जो पौधों से पोषण प्राप्त करते हैं और विश्व स्तर पर फसल उत्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण जैविक बाधा माने जाते हैं। अब तक लगभग 4,100 पौध परजीवी सूत्रकृमि प्रजातियों की पहचान की जा चुकी है, जिनमें से अनेक आर्थिक रूप से हानिकारक हैं और वैश्विक खाद्य सुरक्षा के लिए चुनौती प्रस्तुत करती हैं।

ये सूत्रकृमि न केवल प्रत्यक्ष रूप से उपज हानि करते हैं, बल्कि अन्य पौध रोगजनकों के साथ अंत:क्रिया कर रोग जटिलताओं को भी बढ़ाते हैं। इसके साथ ही इनके लक्षण प्राय: स्पष्ट नहीं होते, जिसके कारण किसान इन्हें अक्सर नजरअंदाज कर देते हैं।

सूत्रकृमि धान की जड़ों, तनों तथा बीजों को प्रभावित कर पौधों की वृद्धि,

[1]ओडिशा कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,भुबनेश्वर-751003; [2]भाकृअनुप-केंद्रीय धान अनुसंधान संस्थान, कटक-753006, ओडिशा; [3]सी.वी. रमन ग्लोबल यूनिवर्सिटी, भुबनेश्वर-752054

पोषक तत्वों के अवशोषण तथा दानों के विकास को बाधित करते हैं, जिससे उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: स्वस्थ बीज का उपयोग, फसलचक्र का पालन, प्रतिरोधी किस्मों का चयन तथा समेकित सूत्रकृमि प्रबंधन उपायों को अपनाना धान उत्पादन में होने वाली हानि को कम करने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

तना एवं पत्तियों पर लगने वाले सूत्रकृमि

धान में पाए जाने वाले सूत्रकृमियों में से केवल दो प्रमुख प्रजातियां तना एवं पत्तियों पर परजीवी के रूप में पाई जाती हैं, जिनमें एफेलेनचोइड्स बेसेई तथा डाइटिलेंकस एंगस्टस शामिल हैं।

सफेद शीर्ष सूत्रकृमि

शीर्ष सूत्रकृमि, एफेलेनचोइड्स बेसेई, का वर्णन सर्वप्रथम जॉन आर. क्रिस्टी द्वारा वर्ष 1942 में किया गया था। यह एक प्रमुख परजीवी सूत्रकृमि है, जो मुख्य रूप से धान के पौधों के ऊपरी भागों, विशेषकर पत्तियों एवं बढ़ती हुई कलियों को संक्रमित करता है। धान को इस सूत्रकृमि का प्रमुख प्राकृतिक मेजबान माना जाता है। ए. बेसेई का जीवनचक्र अपेक्षाकृत छोटा होता है और लगभग दो सप्ताह में पूरा हो जाता है, जिससे एक ही फसल मौसम में इसकी कई पीढ़ियां विकसित हो सकती हैं।

लक्षण

इस सूत्रकृमि के संक्रमण का प्रमुख लक्षण धान की पत्तियों के शीर्ष भाग पर सफेद या पीले रंग का दिखाई देना है, जिसके कारण इसे सफेद शीर्ष सूत्रकृमि कहा जाता है। खेत में इसके प्रारंभिक लक्षण प्राय: कल्ले बनने की अवस्था में दिखाई देते हैं, जब पत्ती का अंतिम लगभग 5 सें.मी. भाग हल्का पीला या सफेद होकर बाद में सूख जाता है। यह लक्षण पौधे की वृद्धि के दौरान कुछ समय के लिए ही स्पष्ट दिखाई देते हैं। प्रभावित पौधों में ध्वज पत्ती का सिरा मुड़ जाता है, जिससे बाली के समुचित निकलने में बाधा उत्पन्न होती है। संक्रमित बालियां सामान्य बालियों की तुलना में छोटी और हल्की होती हैं। सामान्यत: इस सूत्रकृमि के कारण धान की उपज में लगभग 10 से 60 प्रतिशत तक कमी हो सकती है।

सफेद शीर्ष सूत्रकृमि का संक्रमण

प्रबंधन

- बीजों का गर्म पानी से उपचार 52 से 54 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 10 से 15 मिनट तक करें।
- प्रतिरोधी या सहनशील किस्मों जैसे टेटेप, रोक्सोरो, नीरा 43 तथा ब्ल्यू बोनेट का उपयोग करें।
- समय पर अथवा अपेक्षाकृत जल्दी बुआई करें।
- बीज उपचार हेतु 0.1 प्रतिशत कार्बोसल्फॉन 25 ईसी का प्रयोग करें।
- खड़ी फसल में आवश्यकता अनुसार सूत्रकृमिनाशी जैसे फ्लुओपाइराम अथवा ऑक्सामाइल का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।

जड़ सूत्रकृमि

धान का जड़ सूत्रकृमि हिर्शमैनिएला वंश का एक प्रवासी अंत:परजीवी है, जो मुख्य रूप से धान उगाई जाने वाली जलमग्न परिस्थितियों में अनुकूल रूप से जीवित रहता है तथा धान की जड़ों को संक्रमित करता है। इसकी विभिन्न प्रजातियों में हिर्शमैनिएला ओराइजे आर्थिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है और यह भारत के धान उत्पादक क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाई जाती है। यह सूत्रकृमि अव्यवस्थित जल निकास वाली चिकनी अथवा भारी मृदा में अधिक समय तक जीवित रह सकता है तथा विभिन्न तापमान परिस्थितियों को सहन करने में सक्षम होता है। उत्तर भारत की परिस्थितियों में यह मई-जून के दौरान 35 से 45 डिग्री सेल्सियस तक के उच्च तापमान तथा दिसंबर-जनवरी में 8 से 12 डिग्री सेल्सियस तक के निम्न तापमान को भी सहन कर सकता है। अधिक नमी अथवा जलमग्न परिस्थितियों में यह जड़ों की अपेक्षा मृदा में अधिक समय तक जीवित रह सकता है। इसके अतिरिक्त, धान के खेतों में पाए जाने वाले अनेक खरपतवार भी इसके वैकल्पिक पोषक के रूप में कार्य करते हैं।

लक्षण

यह सूत्रकृमि जड़ों के वल्कुट में प्रवेश कर सुरंगें एवं गुहाएं बना देता है, जिससे जड़ों पर भूरे तथा जल भीगे धब्बे दिखाई देते हैं। इसके परिणामस्वरूप पौधों की शारीरिक क्रियाएं प्रभावित होती हैं तथा उनकी वृद्धि रुक जाती है। ऊपरी भूमि भागों में पौधों का बौना रहना, पत्तियों का पीला पड़ना, कल्लों की संख्या में कमी तथा पुष्पण में देरी जैसे लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं।

प्रबंधन

- जून या जुलाई में शीघ्र रोपाई करें।
- सरसों खली अथवा नीम खली का प्रयोग करें।
- संतुलित उर्वरकों जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश का उचित मात्रा में प्रयोग करें।
- रबी मौसम में गेहूं, अलसी, आलू, फूलगोभी तथा चना जैसी फसलों के साथ फसलचक्र अपनाएं।
- गर्मियों में गहरी जुताई तथा निराई-गुड़ाई करें।
- प्रतिरोधी किस्मों जैसे टीकेएम-9 तथा सीआर-52 का उपयोग करें।
- सेसबानिया रोस्ट्राटा को आकर्षक अथवा ट्रैप फसल के रूप में उगाएं।

जड़ों पर लगने वाले सूत्रकृमि

जड़गांठ सूत्रकृमि

मेलोइडोगाइन ग्रैमिनिकोला एक गतिहीन अंत:परजीवी सूत्रकृमि है, जो धान की जड़ों को संक्रमित करता है और विशेष रूप से वर्षा आधारित ऊंचे क्षेत्रों में उगाए जाने वाले धान के पारिस्थितिकी तंत्र में एक प्रमुख परजीवी माना जाता है। यह भारत के अधिकांश धान उत्पादक क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है तथा प्राय: रबी और खरीफ दोनों मौसमों की नर्सरियों में, विशेषकर रेतीली दोमट और जलोढ़ मृदा में गंभीर क्षति पहुंचाता है। अनुकूल

परिस्थितियों में, विशेष रूप से 22 से 29 डिग्री सेल्सियस तापमान पर, यह सूत्रकृमि लगभग 19 दिनों में अपना जीवनचक्र पूरा कर सकता है।

लक्षण

मेलोइडोगाइन ग्रैमिनिकोला के संक्रमण के ऊपर भूमि लक्षण प्राय: स्पष्ट नहीं होते हैं, जिनमें पत्तियों का पीला पड़ना, पौधों की वृद्धि रुक जाना, पुष्पण में लगभग 10 से 15 दिनों की देरी तथा कल्लों की संख्या में कमी शामिल है। इसकी प्रमुख पहचान जड़ों के सिरों पर हुक के आकार अथवा वलयाकार गांठों का बनना है। इन गांठों के कारण पार्श्व जड़ों और मूल रोमों का विकास बढ़ जाता है। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार, इस सूत्रकृमि के कारण ऊंची भूमि वाले धान में लगभग 16 से 32 प्रतिशत तक उपज हानि हो सकती है, जो अधिक संक्रमण की स्थिति में 64 प्रतिशत तक पहुंच सकती है।

प्रबंधन

- गैर मेजबान फसलों जैसे मूंगफली, सरसों, उड़द तथा आलू के साथ फसलचक्र अपनाएं।
- प्रतिरोधी किस्मों जैसे एआरसी 12620, आईएनआरसी 2002, सीआर 94 सीसीआरपी 51, टीकेएम 6, पटानी, एन 136, बसंत बहार, जगन्नाथ तथा जयंती का चयन करें।
- नर्सरी क्यारी में कार्बोफ्यूरॉन का 0.3 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति वर्ग मीटर की दर से प्रयोग करें।
- बीजों को 0.1 प्रतिशत कार्बोसल्फॉन घोल में लगभग 12 घंटे तक भिगोकर उपचार करें।
- नर्सरी क्यारी में बुआई से लगभग 15 दिनों पूर्व 100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से नीम खली मिलाएं।
- मृदा सौरीकरण अपनाएं।
- जैव नियंत्रण एजेंट जैसे स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस तथा ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम का लगभग 20 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से प्रयोग करें।

मृदा की गहरी जुताई

रासायनिक नियंत्रण

- नर्सरी क्यारी में कार्बोफ्यूरॉन 3 जी (दानेदार) का लगभग 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें तथा रोपाई के 15 से 20 दिनों बाद इसका पुन: प्रयोग करें।
- रोपाई से 20 से 30 मिनट पूर्व पौधों की जड़ों को कार्बोसल्फॉन 25 ईसी (0.1 से 0.2 प्रतिशत) घोल में डुबोकर उपचार करें।
- सूत्रकृमि संक्रमण को कम करने के लिए बीजों को कार्बोसल्फॉन 25 ईसी के घोल में लगभग 6 घंटे तक भिगोकर उपचार करें।

ट्राइकोडर्मा प्रजातियों का संवर्धन

हानिकारक

धान की फसल पर लगभग 210 से अधिक पौध परजीवी सूत्रकृमि प्रजातियां, जो लगभग 35 वंशों का प्रतिनिधित्व करती हैं, आक्रमण करती हैं। इनमें प्रमुख रूप से सफेद शीर्ष सूत्रकृमि, तना सूत्रकृमि, जड़गांठ सूत्रकृमि, धान जड़ सूत्रकृमि तथा पुट्टी सूत्रकृमि आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक हानिकारक माने जाते हैं। इन सूत्रकृमियों के संयुक्त प्रभाव से धान की उपज में लगभग 10.5 प्रतिशत तक कमी आ सकती है, जिससे लगभग 779.30 मिलियन रुपये तक के आर्थिक नुकसान का अनुमान लगाया गया है। विशेष रूप से ऊंचाई वाले धान क्षेत्रों में सूत्रकृमि संक्रमण के कारण दानों का समुचित भराव नहीं हो पाता, जिससे 17 से 30 प्रतिशत तक उपज हानि देखी गई है। तना सूत्रकृमि द्वारा उत्पन्न ऊरा रोग धान की एक गंभीर समस्या है, जिसमें संक्रमण की तीव्रता के आधार पर 20 से 90 प्रतिशत तक उपज हानि संभव है। इसी प्रकार सफेद शीर्ष सूत्रकृमि, जो विशेष रूप से दक्षिणी और पूर्वी भारत के राज्यों में अधिक पाया जाता है, लगभग 20 प्रतिशत तक उपज हानि का कारण बन सकता है।

सारणी: धान के हानिकारक सूत्रकृमि, प्रभावित भाग, पारितंत्र एवं प्रसार का माध्यम

सूत्रकृमि की प्रजातियां	प्रभावित पौधे का भाग	प्रभावित धान पारितंत्र	प्रसार का माध्यम
एफेलेनचोइड्स बेसेई	पर्ण परजीवी (पत्तियां एवं बीज)	ऊंचाई वाले क्षेत्र, सिंचित, निम्न भूमि तथा गहरे पानी वाले क्षेत्र	बीज, तना, बालियां तथा मृदा
डाइटिलेंकस एंगस्टस	पर्ण परजीवी (तना एवं बालियां)	निम्न भूमि तथा गहरे पानी वाले क्षेत्र	तना, बालियां तथा मृदा
मेलोइडोगाइन ग्रैमिनिकोला	जड़ परजीवी (गांठ बनाने वाला सूत्रकृमि)	ऊंचाई वाले क्षेत्र, सिंचित, निम्न भूमि तथा गहरे पानी वाले क्षेत्र	मृदा तथा जड़ें
हिर्शमैनिएला ओराइजे	जड़ परजीवी	सिंचित, निम्न भूमि तथा गहरे पानी वाले क्षेत्र	मृदा तथा जड़ें
हेटेरोडेरा ओराइजिकोला	जड़ परजीवी	ऊंचाई वाले क्षेत्र तथा सिंचित क्षेत्र	मृदा तथा जड़ें
होप्लोलाइमस इंडिकस	जड़ परजीवी (भाला सूत्रकृमि)	ऊंचाई वाले क्षेत्र तथा सिंचित क्षेत्र	मृदा तथा जड़ें
मेलोइडोगाइन ओराइजी	जड़ परजीवी	सिंचित क्षेत्र	मृदा तथा जड़ें

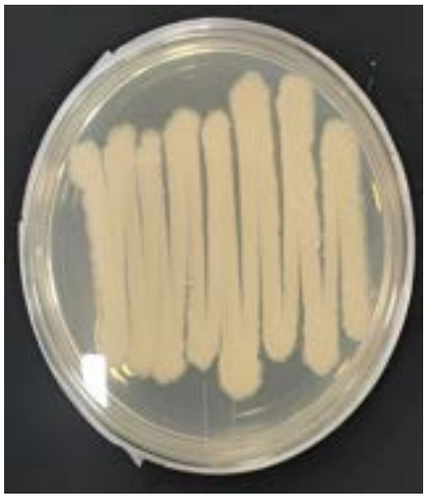

बेसिलस प्रजाति का संवर्धन

पुट्टी सूत्रकृमि

- धान का पुटटी सूत्रकृमि, हेटेरोडेरा ओराइजिकोला, एक अंत:परजीवी सूत्रकृमि है, जो धान की जड़ों को संक्रमित करता है और इसे धान का एक महत्वपूर्ण परजीवी माना जाता है। अनुकूल परिस्थितियों में यह सूत्रकृमि लगभग 30 दिनों में अपना जीवनचक्र पूरा कर लेता है, जिससे एक वर्ष में इसकी लगभग 12 पीढ़ियां विकसित हो सकती हैं। इसका प्रसार मुख्य रूप से संक्रमित पौध सामग्री, सिंचाई के पानी तथा संक्रमित कृषि उपकरणों के माध्यम से होता है।

लक्षण

- हेटेरोडेरा ओराइजिकोला के संक्रमण से पौधों की जड़ें भूरी हो जाती हैं, पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं तथा पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। संक्रमित पौधों में सामान्य से लगभग 10 से 15 दिन पहले पुष्पण हो सकता है और दानों का भराव भी प्रभावित रहता है।
- जड़गांठ सूत्रकृमि के विपरीत यह प्रजाति जड़ों पर गांठ नहीं बनाती, बल्कि जड़ों से जुड़े छोटे भूरे पुट्टी या सिस्ट का बनना इसकी प्रमुख पहचान है। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार इस सूत्रकृमि के कारण धान की उपज में लगभग 38 प्रतिशत तक कमी हो सकती है।

स्वस्थ जड़ तंत्र

प्रबंधन

- बुआई से पूर्व बीजों को 0.02 प्रतिशत फेनामिफॉस घोल में लगभग 6 घंटे तक भिगोकर उपचार करें।
- रोपाई के 15 से 20 दिनों बाद मृदा में कार्बोफ्यूरॉन का लगभग 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।
- प्रतिरोधी किस्मों जैसे लालनाकांडा तथा सीआर 143-2-2 का उपयोग करें।
- संक्रमण के प्रसार को रोकने के लिए संक्रमित क्षेत्रों से पौध सामग्री के स्थानांतरण पर नियंत्रण जैसे नियामक उपाय अपनाएं।

तना सूत्रकृमि

डाइटिलेंकस एंगस्टस धान की फसल में ऊरा रोग का प्रमुख कारण है और यह भारत के विभिन्न धान उत्पादक क्षेत्रों में पाया जाता है। यह सूत्रकृमि विशेष रूप से गहरे पानी की परिस्थितियों में उगाए जाने वाले धान में अधिक क्षति पहुंचाता है। इसे सामान्यत: तना सूत्रकृमि कहा जाता है, क्योंकि यह मुख्य रूप से धान के पौधे के तने के ऊतकों में निवास कर वहीं से पोषण प्राप्त करता है। यह एक अनिवार्य परजीवी है और धान में ऊरा रोग के रूप में एक गंभीर समस्या उत्पन्न करता है।

लक्षण

डाइटिलेंकस एंगस्टस द्वारा उत्पन्न रोग को सामान्यत: ऊरा अथवा डाकपोरा रोग कहा जाता है। इसके लक्षण खेत में प्राय: धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं, जो धीरे-धीरे पूरे खेत में फैल सकते हैं। वानस्पतिक अवस्था में संक्रमण होने पर पत्ती खोल पर पीली या सफेद धारियां दिखाई देती हैं तथा पत्तियों के किनारे लहरदार हो जाते हैं। समय के साथ ये धारियां भूरे धब्बों में परिवर्तित हो जाती हैं और तना तथा अंतरकलिकाएं गहरे या काले रंग की हो जाती हैं। प्रभावित पौधों में पत्तियों तथा पत्ती-खोल का मुड़ना भी सामान्य लक्षण है। कभी-कभी गांठों से अत्यधिक शाखाएं निकलने लगती हैं, जिससे पौधे झाड़ी जैसे दिखाई देते हैं।

प्रबंधन

- प्रतिरोधी किस्मों जैसे आईआर 63142-जे 8-बी-2-1, रायडा 16-06, रायडा 16-07, रायडा 16-011, रायडा 16-017, सीएन-540, एनसी-493 तथा जलमग्न का उपयोग करना चाहिए।
- गर्मियों में गहरी जुताई करें तथा धान के डंठलों और अवशेषों को नष्ट करें।
- जल्दी पकने वाली किस्मों जैसे पद्मपानी, रायडा तथा दीघा की खेती अपनाएं।
- फसलचक्र में जूट या सरसों जैसी गैर-मेजबान फसलों को शामिल करें।
- रासायनिक नियंत्रण के अंतर्गत मृदा में कार्बोफ्यूरॉन 3 जी (दानेदार) का लगभग 0.75 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें तथा खड़ी फसल पर 0.2 प्रतिशत कार्बोसल्फॉन 25 ईसी का छिड़काव करें।

मृदा सौरीकरण अपनाना लाभकारी

धान की फसल में सूत्रकृमि एक गंभीर समस्या के रूप में उभर रहे हैं, जो जड़ों को क्षति पहुंचाकर पौधों की वृद्धि को बाधित करते हैं और अंतत: उपज तथा गुणवत्ता दोनों को प्रभावित करते हैं। इनके प्रभावी प्रबंधन के लिए प्रतिरोधी किस्मों का चयन, फसलचक्र का पालन तथा जैविक और रासायनिक उपायों का समन्वित उपयोग आवश्यक है। इसके अतिरिक्त बीज एवं पौधों का गर्म पानी से उपचार, ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई तथा सहफसली खेती जैसी कृषि क्रियाओं को अपनाकर सूत्रकृमियों की आबादी को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। इन समेकित उपायों के माध्यम से धान की फसल के स्वास्थ्य और उत्पादन क्षमता में भारी सुधार संभव है।

पोषण से भरपूर माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन

अर्जुन सिंह[1], रमेश कुमार यादव[2], सजील अहमद[3], देवेश कुमार[4] और विनय कुमार[5]

"माइक्रोग्रीन्स सब्जियों एवं जड़ी-बूटियों के नवजात कोमल पौधे होते हैं, जिन्हें बीज अंकुरण के बाद बीजपत्र अवस्था में ही काटकर उपयोग में लाया जाता है। इनमें विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट तथा फाइटोन्यूट्रिएंट्स प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो कई बार पूर्ण विकसित सब्जियों की तुलना में अधिक होते हैं। यही कारण है कि माइक्रोग्रीन्स को स्वास्थ्यवर्धक 'सुपरफूड' के रूप में भी जाना जाता है। भारत में पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से भी माइक्रोग्रीन्स को बढ़ावा दिया जा रहा है। भाकृअनुप-विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा उच्च हिमालयी क्षेत्रों में महिलाओं के पोषण स्तर में सुधार हेतु माइक्रोग्रीन्स एवं गेहूं के ज्वारे को आहार में शामिल करने के लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं।"

आज के समय में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण पोषक तत्वों से भरपूर आहार की मांग तेजी से बढ़ी है। इस संदर्भ में माइक्रोग्रीन्स एक उत्कृष्ट विकल्प के रूप में उभरकर सामने आए हैं। इनके नियमित सेवन से प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत होती है तथा हृदय रोग, मधुमेह और अन्य दीर्घकालिक रोगों के जोखिम को कम करने में सहायता मिलती है। कुछ अध्ययनों के अनुसार माइक्रोग्रीन्स में सामान्य सब्जियों की तुलना में लगभग 40 गुना तक अधिक पोषक तत्व पाए जा सकते हैं।

उत्पादन विधि

बीज का चयन और तैयारी

माइक्रोग्रीन्स उगाने के लिए बाजार से अच्छे, स्वस्थ और गुणवत्तायुक्त बीजों का चयन करें। मूली, मेथी, सरसों और ब्रोकली जैसे बीजों को बोने से पहले 8-10 घंटे तक पानी में भिगोने से अंकुरण तेज और समान रूप से होता है।

माध्यम

किसी ट्रे, गमले या कंटेनर में 1-2 इंच मोटी परत के रूप में साफ मिट्टी या कोकोपीट भरकर उसे समतल कर लें। यदि मिट्टी का उपयोग कर रहे हैं, तो ध्यान रखें कि उसमें खरपतवार, कंकड़ या अन्य अशुद्धियां न हों।

बीज बुआई

तैयार माध्यम की सतह पर बीजों को समान रूप से हल्के हाथ से छिड़कें। इसके बाद बीजों को बहुत मोटी परत से न ढकें, बल्कि ऊपर से हल्की मात्रा में कोकोपीट या मिट्टी की पतली परत डालें।

घर के भीतर भी उत्पादन संभव

उपयोग

माइक्रोग्रीन्स को पकाने से इनमें उपस्थित कई पोषक तत्व, विशेषकर पानी में घुलनशील विटामिन, नष्ट हो सकते हैं। इसलिए इन्हें कच्चे रूप में सेवन करना अधिक लाभकारी माना जाता है। माइक्रोग्रीन्स को विभिन्न तरीकों से दैनिक आहार में आसानी से शामिल किया जा सकता है, जैसे:

सलाद में मिलाकर: माइक्रोग्रीन्स को सलाद में मिलाकर खाने से आहार का स्वाद बढ़ने के साथ-साथ पोषण स्तर भी बढ़ता है।

नीबू के साथ सेवन: माइक्रोग्रीन्स पर कुछ बूंदें नीबू का रस डालकर सेवन करने से इसका स्वाद और अधिक ताजगीपूर्ण एवं रुचिकर हो जाता है।

सैंडविच में उपयोग: सैंडविच में माइक्रोग्रीन्स मिलाने से यह अधिक पौष्टिक और स्वादिष्ट बन जाता है।

सूप और पास्ता में उपयोग: सूप और पास्ता जैसे व्यंजनों में माइक्रोग्रीन्स को सजावट (गार्निशिंग) के रूप में उपयोग किया जा सकता है, जिससे उनके पोषण एवं आकर्षण में वृद्धि होती है।

जूस या स्मूदी में मिलाकर: फलों के जूस या स्मूदी में माइक्रोग्रीन्स मिलाकर सेवन करने से पेय अधिक स्वास्थ्यवर्धक बन जाता है।

[1]पीएचडी शोधार्थी; [2]प्रोफेसर, सब्जी विज्ञान प्रभाग; [5]पीएचडी शोधार्थी, फल एवं उद्यान प्रौद्योगिकी; [3,4]पीएचडी शोधार्थी, खाद्य विज्ञान एवं कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

उपयोगी

माइक्रोग्रीन्स का उपयोग सलाद, सैंडविच, सूप, स्मूदी तथा विभिन्न व्यंजनों की सजावट (गार्निशिंग) के रूप में किया जाता है, जिससे आहार का स्वाद और पोषण दोनों बढ़ते हैं। इन्हें उगाना भी अत्यंत सरल है तथा कम स्थान और सीमित संसाधनों में घर पर आसानी से उगाया जा सकता है। सामान्यत: कटाई के बाद उचित भंडारण की स्थिति में ये 6-7 दिनों तक ताजे बने रहते हैं। माइक्रोग्रीन्स न केवल पोषण से भरपूर हैं, बल्कि इन्हें घर पर आसानी से उगाया जा सकता है, जिससे यह स्वस्थ एवं संतुलित आहार का एक सरल और प्रभावी विकल्प बन जाते हैं।

सिंचाई प्रबंधन

बीज बोने के बाद हल्के छिड़काव द्वारा पानी दें। पानी देने के लिए स्प्रे बोतल या झारीदार पानी देने का उपकरण उपयोग करना अधिक उपयुक्त रहता है। अत्यधिक पानी देने से बचें। अंकुरण और वृद्धि के दौरान प्रतिदिन सुबह और शाम हल्का छिड़काव पर्याप्त होता है।

पोषण का पावरहाउस

माइक्रोग्रीन्स सब्जियों एवं जड़ी-बूटियों के नवजात कोमल पौधे होते हैं, जिन्हें अंकुरण के बाद प्रारंभिक अवस्था में ही काटकर उपयोग में लाया जाता है। वर्तमान समय में ये एक लोकप्रिय 'सुपरफूड' के रूप में तेजी से प्रसिद्ध हो रहे हैं। इसका प्रमुख कारण इनका उच्च पोषण स्तर है। माइक्रोग्रीन्स न केवल स्वादिष्ट होते हैं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी अत्यंत लाभकारी माने जाते हैं।

अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि माइक्रोग्रीन्स में विटामिन, कैरोटिनॉइड्स, खनिज तत्व तथा एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। कई मामलों में इनमें परिपक्व सब्जियों की तुलना में 4-40 गुना तक अधिक पोषक तत्व पाए जा सकते हैं। ये कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन, मैग्नीज, जिंक, सेलेनियम तथा मॉलिब्डेनम जैसे महत्वपूर्ण खनिजों के अच्छे स्रोत होते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें पॉलीफेनॉल्स तथा अन्य एंटीऑक्सीडेंट यौगिक भी पाए जाते हैं, जो शरीर को विभिन्न रोगों से बचाने में सहायक होते हैं।

सीमित स्थान में विविध उत्पादन

विशेष रूप से ब्रैसीकेसी कुल के माइक्रोग्रीन्स पोटेशियम, कैल्शियम, आयरन तथा जिंक के समृद्ध स्रोत माने जाते हैं। इनमें उपस्थित फाइटोकेमिकल्स, जैसे फेनोलिक यौगिक, एंथोसायनिन, ग्लूकोसिनोलेट्स तथा कैरोटिनॉइड्स, शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने और दीर्घकालिक रोगों के जोखिम को कम करने में सहायक होते हैं।

नियमित रूप से माइक्रोग्रीन्स का सेवन निम्न स्वास्थ्य समस्याओं के जोखिम को कम करने में सहायक हो सकता है:

हृदय रोग

माइक्रोग्रीन्स पॉलीफेनॉल्स के अच्छे स्रोत होते हैं, जो एंटीऑक्सीडेंट का एक महत्वपूर्ण वर्ग हैं। ये रक्त में ट्राइग्लिसराइड तथा एलडीएल (खराब) कोलेस्ट्रॉल के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक हो सकते हैं, जिससे हृदय रोग का जोखिम कम होता है।

अल्जाइमर रोग

पॉलीफेनॉल्स एवं अन्य एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर माइक्रोग्रीन्स मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बेहतर बनाए रखने में सहायक हो सकते हैं। ये उम्र बढ़ने के साथ होने वाली स्मरण शक्ति संबंधी समस्याओं के जोखिम को कम करने में सहायक माने जाते हैं।

मधुमेह

माइक्रोग्रीन्स में उपस्थित एंटीऑक्सीडेंट ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने में सहायक होते हैं, जिससे शरीर में शर्करा के अवशोषण की प्रक्रिया बेहतर हो सकती है। उदाहरण के रूप में, मेथी के माइक्रोग्रीन्स रक्त शर्करा नियंत्रण में सहायक पाए गए हैं।

कैंसर

एंटीऑक्सीडेंट एवं पॉलीफेनॉल्स से भरपूर माइक्रोग्रीन्स कई प्रकार के कैंसर के जोखिम को कम करने में सहायक हो सकते हैं। विशेष रूप से ब्रोकली के माइक्रोग्रीन्स में पाए जाने वाले जैव सक्रिय यौगिक पाचन तंत्र से संबंधित कैंसर के जोखिम को कम करने में सहायक माने जाते हैं।

माइक्रोग्रीन्स पोषक तत्वों से भरपूर छोटे पौधे हैं, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं। इनका नियमित सेवन हृदय रोग, मधुमेह तथा अन्य दीर्घकालिक रोगों के जोखिम को कम करने में सहायक हो सकता है। इन्हें घर पर आसानी से उगाकर दैनिक आहार में शामिल किया जा सकता है, जिससे आहार का पोषण स्तर बढ़ाने के साथ-साथ स्वस्थ जीवनशैली अपनाने में सहायता मिलती है। ■

माइक्रोग्रीन्स उत्पादन हेतु प्रमुख वनस्पतियां

ब्रैसीकेसी कुल: सरसों, फूलगोभी, ब्रोकली, बंदगोभी और मूली इस कुल की प्रमुख फसलें हैं, जिनके माइक्रोग्रीन्स पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं।

एस्टीरेसी कुल: लेट्यूस और चिकोरी इस कुल की प्रमुख सब्जियां हैं, जिनके माइक्रोग्रीन्स स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्धक होते हैं।

एपिएसी कुल: गाजर, सौंफ, अजमोद (पार्सले), धनिया और सोआ (डिल) इस कुल की महत्वपूर्ण फसलें हैं, जिनके माइक्रोग्रीन्स का उपयोग सलाद एवं सजावट में किया जाता है।

एमैरिलिडेसी कुल: लहसुन, प्याज और लीक इस कुल की प्रमुख फसलें हैं, जिनके माइक्रोग्रीन्स स्वाद और औषधीय गुणों से युक्त होते हैं।

अमरेंथस कुल: चौलाई, पालक, चुकंदर और स्विस चर्ड इस कुल की महत्वपूर्ण फसलें हैं, जिनके माइक्रोग्रीन्स पोषक तत्वों से समृद्ध होते हैं।

कृषि में बढ़ता ड्रोन का महत्व

निधि कुमारी[1], प्रभात कुमार सिंह[2], दिब्यांशु शेखर[3], आशीष राय[4] और **पूजा कुमारी[5]**

"खेती में आधुनिक कृषि यंत्रों का महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है, विशेषकर वर्तमान समय में जब कृषि क्षेत्र में तकनीकी नवाचारों का तेजी से विस्तार हो रहा है। वैश्विक स्तर पर कृषि कार्यों में आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस और ड्रोन तकनीक का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। भारत में भी कृषि को अधिक सरल, सटीक एवं लाभकारी बनाने के लिए ड्रोन के उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है। कृषि ड्रोन के माध्यम से फसल मूल्यांकन, भूमि अभिलेखों के डिजिटलीकरण तथा कीटनाशकों और पोषक तत्वों के छिड़काव जैसे कार्य अधिक दक्षता के साथ किए जा सकते हैं। विशेष रूप से बड़े क्षेत्रफल में बहुत कम समय में कीटनाशक, उर्वरक एवं अन्य रसायनों का समान रूप से छिड़काव संभव है, जिससे समय एवं श्रम दोनों की बचत होती है और लागत में भी कमी आती है। ड्रोन की सहायता से खेत के विशेष भागों में आवश्यकतानुसार ही कीटनाशकों एवं पोषक तत्वों का छिड़काव किया जा सकता है, जिससे संसाधनों का कुशल उपयोग होता है। इसके परिणामस्वरूप न केवल मृदा की गुणवत्ता बेहतर बनी रहती है, बल्कि फसलों में रसायनों के अवशेष भी कम होते हैं। इस प्रकार, ड्रोन तकनीक खेती में सटीकता, दक्षता एवं स्थिरता लाने के साथ-साथ किसानों की आय बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।"

ड्रोन तकनीक का एक प्रमुख लाभ यह है कि इससे फसलों में कीट एवं रोग प्रबंधन सही समय पर और सटीक मात्रा में किया जा सकता है। ड्रोन एक मानव रहित छोटा विमान होता है, जिसे दूरस्थ नियंत्रण या स्वचालित प्रणाली द्वारा संचालित किया जाता है। इसमें जीपीएस आधारित नेविगेशन सिस्टम, विभिन्न सेंसर तथा नियंत्रक यंत्र लगे होते हैं और यह बैटरी आधारित ऊर्जा पर कार्य करता है।

उपयोगिता

- **सिंचाई निगरानी:** बड़े क्षेत्र में सिंचाई की स्थिति पर ड्रोन के माध्यम से प्रभावी निगरानी की जा सकती है। मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर सूखे क्षेत्रों की पहचान कर बेहतर सिंचाई प्रबंधन में सहायता करते हैं। टाइम-लैप्स फोटोग्राफी के जरिए यह भी पता लगाया जा सकता है कि खेत का कौन-सा भाग ठीक से सिंचित नहीं हो रहा है तथा साथ ही संभावित जल रिसाव की जानकारी भी मिलती है।
- **फसल स्वास्थ्य की निगरानी:** ड्रोन की सहायता से फसलों में रोग या संक्रमण का प्रारंभिक स्तर पर ही पता लगाया जा सकता है। विभिन्न तरंग दैर्ध्य (ग्रीन लाइट आदि) के

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा एवं जल अभियंत्रण); [3]वरिष्ठ वैज्ञानिक सह अध्यक्ष; [5]विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान); कृषि विज्ञान केन्द्र, जाले, दरभंगा; [4]विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, परसौनी, पूर्वी चंपारण-II; [2]पूर्व अनुसंधान सहायक (जलवायु अनुकूल कृषि कार्यक्रम), डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर-847302 (बिहार)

आधार पर मल्टीस्पेक्ट्रल फोटो तैयार कर फसल की स्थिति का सटीक आकलन किया जाता है, जिससे समय रहते उपचार संभव होता है।

- **मृदा विश्लेषण:** ड्रोन सर्वेक्षण द्वारा खेत की मृदा की गुणवत्ता, नमी, नाइट्रोजन स्तर तथा बीज रोपण स्वरूप का विश्लेषण किया जा सकता है। 3-डी मानचित्रण के माध्यम से किसान अपने खेत की स्थिति को बेहतर ढंग से समझकर उचित प्रबंधन कर सकते हैं।
- **फसल नुकसान का आकलन:** मल्टीस्पेक्ट्रल एवं आरजीबी सेंसर की सहायता से खरपतवार, रोग एवं कीट प्रभावित क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है। इससे लक्षित उपचार कर लागत कम की जा सकती है।
- **कीटनाशकों का छिड़काव:** ड्रोन के माध्यम से कीटनाशकों एवं उर्वरकों का तेज, सटीक एवं सुरक्षित छिड़काव संभव है। यह मानव को हानिकारक रसायनों के सीधे संपर्क से बचाता है। विशेष परिस्थितियों, जैसे टिड्डी आक्रमण, में ड्रोन कम समय में बड़े क्षेत्र में प्रभावी नियंत्रण करने में सक्षम है।
- **मवेशियों की ट्रैकिंग:** ड्रोन के माध्यम से किसान अपने मवेशियों की गतिविधियों पर भी निगरानी रख सकते हैं। थर्मल सेंसर तकनीक खोए हुए पशुओं का पता लगाने में सहायक होती है।
- **संसाधनों का इष्टतम उपयोग:** ड्रोन की सहायता से बीज, पानी, उर्वरक एवं कीटनाशकों का आवश्यकता आधारित उपयोग किया जा सकता है। इससे संसाधनों की बचत होती है तथा समस्याग्रस्त क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देकर सटीक प्रबंधन संभव होता है।
- **बीमा दावों में उपयोगिता:** ड्रोन के माध्यम से फसल नुकसान का सटीक आकलन एवं प्रमाण एकत्र किया जा सकता है। जीपीएस आधारित विश्वसनीय डेटा के आधार पर किसान बीमा कंपनियों के समक्ष अपने दावों को अधिक मजबूती से प्रस्तुत कर सकते हैं।

फसलों में कीट एवं रोगों के प्रबंधन में सहायक

इस प्रकार, कृषि ड्रोन तकनीक खेती को अधिक सटीक, सुरक्षित एवं लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

विभिन्न ड्रोन की कार्य प्रणाली

मल्टी रोटर ड्रोन

यह ड्रोन तकनीक का सबसे सरल और सर्वाधिक प्रचलित रूप है, जिसका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। ये ड्रोन संचालन में आसान और अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं, इसलिए हवाई फोटोग्राफी, निगरानी तथा कृषि कार्यों के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। इन्हें मल्टी-रोटर इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इनमें एक से अधिक रोटर लगे होते हैं। रोटरों की संख्या के आधार पर इनके विभिन्न प्रकार होते हैं, जैसे ट्राइकोप्टर (3 रोटर), क्वाडकॉप्टर (4 रोटर), हेक्साकॉप्टर (6 रोटर) और

फिक्स्ड विंग ड्रोन

फिक्स्ड विंग ड्रोन हवाई जहाज की तरह कार्य करते हैं और उड़ान के दौरान लिफ्ट एवं ड्रैग के सिद्धांतों का उपयोग करते हैं। अधिकांश फिक्स्ड विंग ड्रोन में एक ही प्रोपेलर होता है, जिसके कारण ये ऊर्जा की दृष्टि से अधिक दक्ष होते हैं। परिणामस्वरूप, इनकी बैटरी लाइफ अपेक्षाकृत लंबी होती है और ये 20 मिनट या उससे अधिक समय तक हवा में बने रह सकते हैं। फिक्स्ड विंग ड्रोन की गति रोटरी (मल्टी-रोटर) ड्रोन की तुलना में अधिक होती है। अधिक गति और लंबी उड़ान अवधि के कारण ये कम समय में बड़े क्षेत्रफल को कवर करने में सक्षम होते हैं, जिससे ये सर्वेक्षण एवं बड़े खेतों की निगरानी के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होते हैं। हालांकि, इन ड्रोन की एक सीमा यह है कि इन्हें उड़ान भरने एवं उतरने के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्थान की आवश्यकता होती है, जैसे हवाई जहाज के रनवे की तरह। कुछ फिक्स्ड विंग ड्रोन को इस प्रकार डिजाइन किया जाता है कि वे जमीन पर फिसलकर (लैंडिंग) उतर सकें। इसके अतिरिक्त, फिक्स्ड विंग के हाइब्रिड संस्करण भी उपलब्ध हैं, जो हेलीकॉप्टर की तरह सीधा उड़ान भरने और उतरने में सक्षम होते हैं, जबकि उड़ान के दौरान फिक्स्ड विंग की तरह कार्य करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि ड्रोन का बढ़ता दायरा

ऑक्टोकॉप्टर (8 रोटर)। मल्टी-रोटर ड्रोन की प्रमुख विशेषता यह है कि ये बेहतर स्थिरता एवं दिशा नियंत्रण प्रदान करते हैं, जिससे किसी निश्चित स्थान पर रुककर कार्य करना संभव होता है। हालांकि, फिक्स्ड-विंग ड्रोन की तुलना में इनकी गति और उड़ान सीमा अपेक्षाकृत कम होती है।

वर्तमान में कृषि ड्रोन की भार सहन क्षमता एवं अंतिम उपयोग के आधार पर इसकी कीमत सामान्यत: 3 से 10 लाख रुपये तक हो सकती है। किसी छोटे किसान के लिए इसे खरीदना आर्थिक रूप से चुनौतीपूर्ण हो सकता है, लेकिन कस्टम हायरिंग सेंटर के माध्यम से किराये पर लेकर किसान इस तकनीक का लाभ उठा सकते हैं।

बड़े किसान, कस्टम हायरिंग सेंटर या कृषि संस्थान वर्तमान बजट में प्रस्तावित सरकारी आर्थिक सहायता का उपयोग कर ड्रोन खरीद सकते हैं। सरकार द्वारा देश में ड्रोन निर्माण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से इसके आयात पर भी नियंत्रण लगाया गया है। साथ ही, कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीकों के उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है, ताकि बेहतर उत्पादन के साथ किसानों की आय में वृद्धि सुनिश्चित की जा सके।

खेती की बढ़ती लागत और प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसानों को होने वाले नुकसान को कम करने के लिए ड्रोन जैसी तकनीक उपयोगी विकल्प के रूप में उभर रही है। प्रिसिजन फार्मिंग के माध्यम से ड्रोन का उपयोग कर किसान लागत में कमी, समय की बचत तथा उत्पादन में सुधार कर सकते हैं।

फसल निगरानी में उपयोगी ड्रोन

लाभ

- पारंपरिक छिड़काव की तुलना में 50-60 गुना अधिक तेजी से कीटनाशकों एवं उर्वरकों का छिड़काव।
- लगभग 15-20 मिनट में 1 एकड़ क्षेत्र में प्रभावी छिड़काव की क्षमता।
- एक दिन में 30-40 एकड़ तक छिड़काव तथा एक बार में 15-20 लीटर दवा ले जाने की क्षमता।
- लगभग 90 प्रतिशत तक पानी एवं 40 प्रतिशत तक कीटनाशक/फफूंदनाशक की बचत।
- पूरे खेत में समान मात्रा में दवा के छिड़काव से बेहतर कीट प्रबंधन।
- लागत में कमी, समय की बचत तथा समय पर कीट एवं रोग नियंत्रण संभव।
- मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर द्वारा बीज रोपण स्वरूप, मृदा विश्लेषण, सिंचाई एवं नाइट्रोजन स्तर का आकलन।
- फसल क्षति, खरपतवार, रोग एवं कीटग्रस्त क्षेत्रों की सटीक पहचान में सहायक।
- विषैले रसायनों के सीधे संपर्क से बचाव, जिससे स्वास्थ्य जोखिम एवं दुर्घटनाओं में कमी।
- बड़े खेतों एवं घनी/लंबी फसलों में त्वरित निगरानी एवं छिड़काव की सुविधा।
- सटीक डेटा संग्रह एवं विश्लेषण से त्वरित एवं बेहतर निर्णय लेने में सहायता।

कम समय में अधिक क्षेत्र का कुशल प्रबंधन

इसके अतिरिक्त, पौधा संरक्षण कार्यक्रमों के अंतर्गत कृषि विभाग द्वारा किसानों को अनुदानित दरों पर ड्रोन से कीटनाशक छिड़काव की सुविधा उपलब्ध करवाई जा रही है। ड्रोन से छिड़काव पर प्रति एकड़ अधिकतम 50 प्रतिशत या 240 रुपये तक का अनुदान दिया जाता है, जबकि एक किसान को अधिकतम 10 एकड़ तक इसका लाभ मिल सकता है। इसके लिए राज्य स्तर पर ड्रोन सेवा प्रदाताओं का चयन किया गया है, जिनके माध्यम से किसान इस सुविधा का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

मकई रेशम का प्रसंस्करण

आकांक्षा सिंह[1] और **अंजलि वर्मा**[2]

"आज की बदलती जीवनशैली में कृषि अपशिष्ट एवं उप उत्पादों को कार्यात्मक यौगिकों के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में देखा जा रहा है। कृषि प्रसंस्करण उद्योगों से बड़ी मात्रा में उप उत्पाद उत्पन्न होते हैं, जिन्हें प्रायः अपशिष्ट मानकर त्याग दिया जाता है। यह न केवल संसाधनों का अपव्यय है, बल्कि पर्यावरण प्रदूषण का भी एक प्रमुख कारण बनता है। इसी संदर्भ में मक्का रेशम (कॉर्न सिल्क) एक ऐसा उप उत्पाद है, जिसमें पोषक एवं स्वास्थ्यवर्धक गुण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। सामान्यतः मक्का के विभिन्न भाग जैसे-अनाज, पत्तियां, डंठल तथा पुष्पक्रम का उपयोग चारे, कच्चे माल एवं घरेलू उपयोगों में किया जाता है, जबकि मक्का रेशम को अक्सर बेकार समझकर फेंक दिया जाता है। विशेष रूप से बेबीकॉर्न उत्पादन के दौरान बड़ी मात्रा में ताजा मक्का रेशम निकलता है, जिसे प्रायः अपशिष्ट के रूप में त्याग दिया जाता है। वास्तव में मक्का रेशम पोषक तत्वों से भरपूर होता है और इसका उपयोग कार्यात्मक खाद्य उत्पादों के निर्माण में किया जा सकता है। यदि इसका व्यवस्थित उपयोग किया जाए, तो यह किसानों के लिए अतिरिक्त आय का एक नया स्रोत बन सकता है। साथ ही, इसे जलाने या नष्ट करने के बजाय उपयोग में लाने से पर्यावरणीय क्षरण को भी रोका जा सकता है। इस प्रकार मक्का रेशम का उपयोग एक टिकाऊ कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने के साथ-साथ जनस्वास्थ्य सुधार में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।"

बरसात के मौसम में भुना हुआ भुट्टा खाने का आनंद लगभग सभी लोग लेते हैं और आजकल स्वीटकॉर्न भी हमारे दैनिक आहार का हिस्सा बन चुका है। लेकिन यह जानकर आश्चर्य होता है कि भुट्टे के साथ निकलने वाले रेशे जिन्हें कॉर्न सिल्क या मक्का रेशम कहा जाता है वास्तव में स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं और इन्हें अपशिष्ट समझकर फेंकना एक बड़ी भूल है।

[1]वैज्ञानिक, खाद्य प्रसंस्करण; [2]वैज्ञानिक, गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान केन्द्र, मऊ, बस्ती, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

प्रसंस्करण

मक्का रेशम के प्रसंस्करण हेतु सर्वप्रथम ताजे रेशम को 0.1 प्रतिशत नमक के घोल से धोया जाता है, जिससे उसका हरा स्वाद कम हो जाता है। इसके बाद धुले हुए रेशम को साफ सतह पर फैलाकर छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है।

सिफारिशें

- मक्का रेशम के अधिकतम उपयोग के लिए बेबीकॉर्न उत्पादन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। बेबीकॉर्न की तुड़ाई परिपक्वता से पहले ही कर ली जाती है। इससे भुट्टा और मक्का रेशम दोनों का उपयोग संभव हो जाता है, जो किसानों के लिए अतिरिक्त आय का एक प्रभावी स्रोत बन सकता है।
- मक्का रेशम के कार्यात्मक गुणों पर आधारित अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि इसका उपयोग विभिन्न खाद्य उत्पादों के निर्माण में किया जा सकता है। विशेष रूप से इसे बेकरी उत्पादों तथा अन्य मूल्य संवर्धित खाद्य उत्पादों में शामिल कर पोषण गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है।
- मक्का रेशम एंटीऑक्सीडेंट, प्रोटीन, खनिज तथा आहार फाइबर से भरपूर एक उपयोगी कृषि उप उत्पाद है। इसलिए इसका उपयोग मोटापा, मधुमेह तथा अन्य जीवनशैली संबंधी रोगों से ग्रसित व्यक्तियों के आहार में पूरक के रूप में किया जा सकता है।

स्वास्थ्यवर्धक मकई

कटे हुए मक्का रेशम को ट्रे ड्रायर में 40 डिग्री सेल्सियस तापमान पर लगभग 6 घंटे तक सुखाया जाता है, जिससे इसकी नमी की मात्रा घटकर लगभग 7-9 प्रतिशत रह जाती है। सुखाने के बाद रेशम को हाथ से हल्का कुचलकर इलेक्ट्रिक ग्राइंडर में पीस लिया जाता है तथा 60 जाली की छलनी से छानकर लगभग 250 माइक्रोमीटर कण आकार का महीन पाउडर प्राप्त किया जाता है। तैयार पाउडर को सुरक्षित भंडारण हेतु वायुरोधी जिपर पॉलीबैग में रखा जाता है।

मकई रेशम को सुखाने की प्रक्रिया

फाइबर अनुपूरक

आहार फाइबर अनुपूरक तैयार करने के लिए ताजे मक्का रेशम की विभिन्न किस्मों का उपयोग किया जा सकता है। इसके प्रसंस्करण की प्रक्रिया निम्न तीन चरणों में पूरी की जाती है:

सफाई एवं कटाई

कटाई किए गए मक्का रेशम को साफ पेपर बैग में एकत्र कर प्रयोगशाला अथवा प्रसंस्करण स्थल पर लाया जाता है। इसके बाद रेशम को 0.1 प्रतिशत नमक के घोल से धोया जाता है, जिससे अवांछित स्वाद दूर हो जाता है। धुले हुए रेशम को साफ सतह पर फैलाकर लगभग 10 मिनट बाद छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है।

सुखाना

कटे हुए मक्का रेशम को ट्रे ड्रायर में 40 डिग्री सेल्सियस तापमान पर लगभग 6 घंटे तक सुखाया जाता है। इस प्रक्रिया के बाद इसकी अंतिम नमी की मात्रा लगभग 7-10 प्रतिशत रह जाती है, जो सुरक्षित भंडारण के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

पाउडर की तैयारी

सुखाए गए मक्का रेशम को पहले हाथ से कुचलकर इलेक्ट्रिक ग्राइंडर में पीस

लिया जाता है। इसके बाद पाउडर को छलनी से छानकर आहारीय फाइबर अनुपूरक तथा अन्य खाद्य अनुपूरकों के निर्माण हेतु उपयोग में लिया जाता है।

पोषण संबंधी संरचना

मकई रेशम की पोषण संरचना पर बहुत सीमित डेटा उपलब्ध है, जिसके बारे में भारत में अध्ययन दुर्लभ हैं। सूखे वजन के आधार पर मकई रेशम की अनुमानित संरचना 9.65-10.4 प्रतिशत, प्रोटीन के लिए 9.42-17.6 प्रतिशत, वसा के लिए 0.29-4.74 प्रतिशत, राख के लिए 1.2-3. 91 प्रतिशत, फाइबर के लिए 7.34-16. 05 प्रतिशत और कार्बोहाइड्रेट के लिए 65.5-74.3 प्रतिशत की सीमा में है। मक्के का रेशम खनिजों का अच्छा स्रोत है।

फाइटो केमिकल संरचना

मकई के रेशम में फिनोल, पॉली फेनोल, फेनोलिक एसिड, फ्लेवोनोइड, फ्लेवोन ग्लाइकोसाइड, एंथोसायनिन, कैरोटीनॉयड, टेरपेनोइड, एल्कलॉइड, ल्यूटिन, टैनिन, सैपोनिन, वाष्पशीलतेल, विटामिन, कुछ शर्करा और पॉलीसेकेराइड सहित कई बायोएक्टिव फाइटोकेमिकल यौगिक होते हैं। इसमें कैल्शियम की मात्रा बहुत अधिक है और आयरन, मैग्नीशियम और जिंक की अच्छी मात्रा है। इसलिए, मकई रेशम पाउडर बिना किसी दूसरी फसल उगाए आबादी की सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने में मददगार होगा।

मूल्य संवर्धित मकई रेशम का पाउडर

स्वास्थ्यवर्धक

मक्का रेशम में अनेक पोषक तत्व एवं जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जो स्वास्थ्य संरक्षण में सहायक माने जाते हैं। इसके नियमित एवं संतुलित उपयोग से निम्न संभावित लाभ प्राप्त हो सकते हैं:

- **मूत्र पथ संक्रमण में सहायक:** मक्का रेशम से तैयार चाय या काढ़ा पारंपरिक रूप से मूत्र संबंधी समस्याओं में उपयोग किया जाता रहा है। यह मूत्र प्रवाह को बढ़ाने में सहायक माना जाता है, जिससे मूत्र पथ संक्रमण की समस्या में राहत मिल सकती है।
- **वजन नियंत्रण में सहायक:** मक्का रेशम में उपस्थित आहार फाइबर पाचन क्रिया को बेहतर बनाने तथा शरीर में अतिरिक्त वसा के संचय को नियंत्रित करने में सहायक हो सकता है, जिससे वजन नियंत्रण में मदद मिलती है।
- **गुर्दों के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी:** मक्का रेशम से तैयार पेय का उपयोग पारंपरिक रूप से गुर्दों के स्वास्थ्य को बनाए रखने हेतु किया जाता रहा है। यह मूत्रवर्धक प्रभाव के कारण शरीर से अवांछित अपशिष्ट पदार्थों के निष्कासन में सहायक माना जाता है।
- **मधुमेह नियंत्रण में सहायक:** कुछ अध्ययनों के अनुसार मक्का रेशम रक्त शर्करा स्तर के संतुलन में सहायक भूमिका निभा सकता है। इसलिए इसे मधुमेह रोगियों के आहार में पूरक के रूप में उपयोगी माना जाता है।
- **उच्च रक्तचाप नियंत्रण में सहायक:** मक्का रेशम का मूत्रवर्धक प्रभाव शरीर से अतिरिक्त सोडियम के निष्कासन में सहायक हो सकता है, जिससे उच्च रक्तचाप के नियंत्रण में लाभ मिल सकता है।

मूल्य संवर्धित उत्पाद

वर्तमान जीवनशैली में कृषि उप उत्पादों को कार्यात्मक यौगिकों के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में देखा जा रहा है। उपभोक्ताओं में आहार संबंधी स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ने के कारण प्राकृतिक एवं सुरक्षित अवयवों की मांग निरंतर बढ़ रही है। इस संदर्भ में मक्का रेशम एक महत्वपूर्ण कृषि उप उत्पाद के रूप में उभरकर सामने आया है, जिसका उपयोग स्वास्थ्यवर्धक खाद्य उत्पादों के निर्माण तथा किसानों की आय बढ़ाने में किया जा सकता है।

पोषण संबंधी संरचना के आधार पर मक्का रेशम पाउडर में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, आहार रेशा तथा खनिज तत्व, विशेष रूप से कैल्शियम एवं आयरन, पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें विभिन्न पादप रसायन (फाइटोकेमिकल) यौगिक, विशेषकर एंटीऑक्सीडेंट सक्रियता वाले घटक, प्रचुर मात्रा में मौजूद होते हैं।

इन्हीं गुणों के कारण मक्का रेशम का उपयोग विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पादों जैसे मक्का रेशम चाय, स्वास्थ्यवर्धक पेय, आहार फाइबर अनुपूरक, बेकरी उत्पाद (बिस्कुट, ब्रेड आदि), पोषक मिश्रण (न्यूट्रास्यूटिकल उत्पाद)के निर्माण में किया जा सकता है। इससे एक ओर पोषण सुरक्षा को बढ़ावा मिलेगा, वहीं दूसरी ओर कृषि अपशिष्ट के प्रभावी उपयोग से पर्यावरण संरक्षण तथा किसानों की अतिरिक्त आय सुनिश्चित करने में भी सहायता मिलेगी। ■

मई के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह[1], कपिला शेखावत[1], अंजली पटेल[2], विनय उपाध्याय[3], एस.एस. राठौर और **प्रवीण कुमार उपाध्याय[1]**

"मई माह, जिसे सामान्यत: वैशाख-ज्येष्ठ का समय भी कहा जाता है, भारत के अधिकांश भागों में ग्रीष्म ऋतु का चरम काल होता है। कृषि की दृष्टि से यह महीना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस समय तक रबी फसलों जैसे गेहूं, जौ, चना, मसूर एवं मटर की कटाई, मड़ाई और गहाई का कार्य लगभग पूर्ण हो जाता है। इसके बाद इन उपजों का सुरक्षित भंडारण एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में सामने आता है। अनाज के साथ-साथ भूसा भी एक बहुमूल्य उत्पाद है, अत: उसका भंडारण भी सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। रबी फसलोत्पाद को वैज्ञानिक विधियों से सुरक्षित रखना अत्यंत आवश्यक है। मई में सिंचित क्षेत्रों में जायद की फसलें उगाई जाती हैं। समय पर बोई गई फसलें जैसे मूंग, उड़द, लोबिया, मूंगफली, सूरजमुखी, गन्ना, कपास, धान की नर्सरी, चारा फसलें, हरी खाद फसलें, औषधीय एवं मेंथा फसलें, सब्जी फसलें, बागवानी फसलें तथा पुष्प एवं सुगंधित पौधे इस समय पौध अवस्था में होते हैं। इसलिए इनका उचित प्रबंधन आवश्यक होता है। उपलब्ध भूमि, जलवायु और संसाधनों के अनुसार फसलों एवं उन्नत प्रजातियों का चयन, सही समय पर उपयुक्त विधि से बुआई, मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, फसल की क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई तथा खरपतवार, कीट एवं रोग नियंत्रण के आवश्यक उपाय अपनाना बेहद जरूरी है।"

मई माह में खाली खेतों में ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई, मृदा सौरीकरण, खरपतवार नियंत्रण तथा मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए आवश्यक उपाय भी किसान करते हैं। साथ ही, सिंचाई प्रबंधन, खेत की सफाई और फसल अवशेषों का उचित निपटान भी इस माह के प्रमुख कृषि कार्यों में शामिल हैं।

इसके अतिरिक्त, मई में किसान खरीफ फसलों जैसे धान, मक्का और सोयाबीन आदि के लिए बीज, उर्वरक एवं अन्य आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था भी करते हैं। नर्सरी की तैयारी, उन्नत किस्मों का चयन तथा समय पर बुआई की योजना बनाना इस समय अत्यंत आवश्यक होता है। उचित प्रबंधन और समय पर किए गए कार्यों से आगामी

[1]सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012; [2]सस्य विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर-492012 (छत्तीसगढ़); [3]सस्य विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पीली चितेरी रोग

यह रोग मुख्यत: सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। प्रारंभ में कोमल पत्तियों पर पीले-हरे धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में बढ़कर पूरी पत्ती एवं फलियों को प्रभावित कर देते हैं, जिससे फलियों एवं दानों का आकार छोटा रह जाता है। नियंत्रण के लिए मूंग की रोगरोधी किस्में: पूसा 1371, पूसा 1431, पूसा विशाल, पूसा 0672, पूसा 9531, सम्राट, मेहा, एच.यू.एम-16, एमएस-2-15, गंगा-8, पंत मूंग-4 एवं नरेन्द्र मूंग-1 तथा उड़द की किस्में-के.यू.-300, यू.जी.-218, आई.पी.यू.-94-1, पंत उड़द-19 एवं नरेन्द्र उड़द-1 की बुआई करें। साथ ही बुआई के समय डाइसल्फॉन या फोरेट 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से भूमि में प्रयोग करें।

खरीफ मौसम में बेहतर उत्पादन और अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। मई में किए जाने वाले प्रमुख कृषि कार्यों का विवरण इस प्रकार है:

गेहूं, जौ, चना, मसूर एवं मटर की फसल में कटाई उपरांत प्रबंधन

- फसलों की सफल कटाई, मड़ाई तथा गहाई के बाद कई बार किसानों द्वारा अनाज भंडारण के लिए उपयुक्त उपाय करने के बावजूद यदि जरा सी भी चूक हो जाए, तो फसल उत्पाद में भारी नुकसान हो सकता है और वर्षभर की मेहनत पर पानी फिर जाता है। कई बार तो यह मनुष्य एवं पशुओं के उपयोग के योग्य भी नहीं रह जाता है।
- अनाज व बीज को भंडारण से पहले ठीक प्रकार से सुखा लेना चाहिए, क्योंकि अनाज में अधिक नमी होने पर अनेक कीटों जैसे-अनाज का पतंगा (साइटोट्रोगा सिरियलेला), दाल का ढोरा (कैलोसोब्रूकस मैकूलेटस), खपरा बीटल (ट्रोगोडरमा ग्रेनैरियम), सूंड वाली सुरसुरी (साइटोफिलस ओरायजी), घुन या छोटा छिद्रक (राइजोपरथा डोमिनिका), चावल का पतंगा (कोरसायरा सिफेलोनिकी) तथा आटे का कीट (ट्राइबोलियम कैस्टेनियम) आदि का प्रकोप बढ़ जाता है।
- भंडारण के लिए धान्य फसलों में नमी की मात्रा 8-10 प्रतिशत तथा तिलहनी एवं दलहनी फसलों में 6-8 प्रतिशत उपयुक्त मानी जाती है। शोध से यह भी पाया गया है कि भंडारण के समय धान्य फसलों के बीज में 10-12 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर कीटों तथा 14-15 प्रतिशत से अधिक होने पर फफूंदजनित रोगों का प्रकोप होने लगता है। साथ ही 15 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर बीजों की अंकुरण क्षमता प्रभावित होती है।
- भंडारण हेतु सबसे पहले भंडारगृह की अच्छी प्रकार से साफ-सफाई करनी चाहिए। पुराने अवशेषों तथा मकड़ी के जालों को हटाकर दीवारों एवं फर्श पर पड़ी दरारों को सीमेंट से बंद कर देना चाहिए। कीटों से बचाव के लिए मैलाथियॉन 50 ई.सी. को 10 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर भंडारण कक्ष में अच्छी तरह छिड़काव करें तथा कमरे को कम से कम एक सप्ताह तक बंद रखें, जिससे उसमें छिपे हुए कीट नष्ट हो जाते हैं।
- यदि छिड़काव से कीटों का नियंत्रण न हो सके तथा प्रति कि.ग्रा. बीज या अनाज में दो कीट उपस्थित हों, तो धूम्रीकरण करना चाहिए। इसके लिए एल्युमिनियम फॉस्फेट की 1-3 गोली प्रति टन अनाज की दर से विभिन्न ऊंचाइयों पर रखकर ढेर को गैस-अवरोधी चादर से ढक दिया जाता है। गोलियों से फॉस्फिन गैस निकलती है, जो कीटों को नष्ट कर देती है। इसके अतिरिक्त मिथाइल ब्रोमाइड 3-5 मि.ली. प्रति 100 कि.ग्रा. अनाज तथा एथिलीन डाइब्रोमाइड (ई.डी.बी.) 30 मि.ली. प्रति टन बीज की दर से भी धूम्रीकरण किया जा सकता है। अनाज में नीम के बीज का चूर्ण मिलाकर रखने से भी कीटों का प्रकोप कम होता है।
- चना, मटर एवं मसूर के दानों पर सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, तिल अथवा नारियल का तेल 6-7 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. तथा हल्दी पाउडर 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित कर स्टील के बर्तनों में भंडारण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक विधि से निर्मित पात्र जैसे पूसा बिन, पंतनगर कुठला एवं हापुड़ बिन का प्रयोग करना चाहिए। वैज्ञानिक तरीके से अनाज व बीज का भंडारण करने पर कीटों एवं रोगों का प्रकोप कम होता है, जिससे अनाज व बीज लंबे समय तक सुरक्षित रहते हैं।
- गोदाम में बीज भंडारण के लिए फर्श से लगभग एक फीट ऊंचा लकड़ी का प्लेटफॉर्म बनाना चाहिए, जो दीवारों से भी लगभग एक फीट की दूरी पर हो। बोरों को गोदाम की दीवारों से सटाकर नहीं रखना चाहिए।
- भंडारण प्राय: जूट के बोरों में करना चाहिए। नए बोरों का प्रयोग अधिक उपयुक्त रहता है। यदि पुराने बोरों का उपयोग कर रहे हों, तो उन्हें 3-4

चूर्णिल आसिता

इस रोग में पत्तियों एवं अन्य भागों पर सफेद चूर्ण जैसे धब्बे बनते हैं, जो बाद में मटमैले रंग के हो जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियां समय से पहले गिर जाती हैं। नियंत्रण के लिए मूंग की किस्में; पूसा 9072, टार्म-1, सी.ओ.जी. जी.-4, पूसा 105 तथा उड़द की किस्में; एल.बी.जी.-402 एवं एल.बी.जी.-17 की बुआई करें तथा घुलनशील गंधक (0.3 प्रतिशत) या कैराथेन (0.1 प्रतिशत) अथवा कार्बेण्डाजिम (0.05 प्रतिशत) का 7-10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें।

चना फलीबेधक

इस कीट के लार्वा फलियों में प्रवेश कर बीजों को खाते हैं, जिससे दाने सिकुड़ जाते हैं या सूख जाते हैं। यह कीट पत्तियों, फूलों एवं तनों को भी नुकसान पहुंचाता है तथा संक्रमित फलियों में छोटे छेद दिखाई देते हैं। नियंत्रण हेतु फेरोमोन ट्रैप द्वारा नियमित निगरानी करें। जैसे ही 5-6 नर कीट/ट्रैप/24 घंटे मिलने लगें, नियंत्रण उपाय अपनाएं। एन.पी.वी. 250 एल.ई. का छिड़काव करें तथा परभक्षी पक्षियों के बैठने हेतु खेत में टी-आकार की लकड़ियां लगाएं। इसके अतिरिक्त नीम की निबौली के सतत का 5 प्रतिशत घोल भी प्रभावी पाया गया है। आवश्यकता होने पर मिथाइल डिमेटॉन 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें।

सफेद मक्खी

यह कीट पौधों की कोशिकाओं का रस चूसकर उनकी वृद्धि को प्रभावित करता है तथा पीली चितेरी (येलो मोजैक) रोग का संवाहक भी होता है। नियंत्रण के लिए ऑक्सीडिमेटान मिथाइल 0.1 प्रतिशत या डाइमिथोएट 0.03 प्रतिशत का 650-700 लीटर पानी/हैक्टर की दर से 3-4 छिड़काव करें। वैकल्पिक रूप से इमिडाक्लोप्रिड 0.5 मि.ली./लीटर पानी (लगभग 500 लीटर/हैक्टर) की दर से बुआई के 10-15 दिनों बाद छिड़काव करें।

दिनों तक तेज धूप में सुखाएं या गर्म पानी से धो लें अथवा 0.1 प्रतिशत मैलाथियॉन घोल में 15-20 मिनट तक डुबोकर अच्छी तरह सुखाने के बाद ही उपयोग करें।

ग्रीष्मकालीन मूंग, उड़द एवं लोबिया

जल प्रबंधन

अधिकांश क्षेत्रों में मार्च के अंतिम सप्ताह अथवा अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक मूंग, उड़द एवं लोबिया की बुआई हो चुकी होती है। इस समय फसल वृद्धि अवस्था में रहती है, अत: आवश्यकता अनुसार 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें।

खरपतवार प्रबंधन

बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवारों की समस्या अधिक रहती है। पहली सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ-साथ भूमि में वायु संचार बढ़ता है, जिससे मूल ग्रन्थियों में क्रियाशील जीवाणु वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण में अधिक सक्रिय होते हैं। अत: बुआई के 15-20 दिनों के भीतर कसोले से निराई-गुड़ाई अवश्य करें।

रोग प्रबंधन

झुर्रीदार पत्ती रोग

इस रोग में पत्तियों की असामान्य वृद्धि होकर उनमें सलवटें या मरोड़ दिखाई देते हैं। संक्रमित पत्तियां सामान्य से अधिक मोटी एवं खुरदरी प्रतीत होती हैं। नियंत्रण के लिए रोगरोधी किस्मों की बुआई करें तथा रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें। अधिक प्रकोप होने पर डाइमिथोएट 30 ई.सी. का छिड़काव करें।

ग्रीष्मकालीन मूंग

एंथ्रेक्नोज रोग

इस रोग में पत्तियों एवं फलियों पर भूरे, गोल एवं धंसे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। धब्बों का केंद्र गहरे रंग का तथा बाहरी सतह लाल रंग की होती है। अधिक प्रकोप होने पर प्रभावित भाग सूख जाते हैं। नियंत्रण हेतु बुआई से पूर्व बीज को थीरम या कैप्टॉन 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें तथा रोग के लक्षण दिखाई देने पर इन्डोफिल जेड-78 या थीरम 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर 1-2 छिड़काव करें।

सर्कोस्पोरा पर्ण बुदंगी रोग

इस रोग में पत्तियों पर स्लेटी से भूरे रंग के कोणीय धब्बे बनते हैं, जिनके चारों ओर लाल किनारी दिखाई देती है। अधिक प्रकोप होने पर फलियां बनने के समय पत्तियां सड़ जाती हैं। नियंत्रण के लिए बुआई से पूर्व बीज का कैप्टॉन या थीरम 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करें तथा रोग प्रकोप होने पर कार्बेण्डाजिम (0.05 प्रतिशत) या मैंकोजेब (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

उड़द का पत्ती धब्बा रोग

इस रोग में पत्तियों पर गोलाकार भूरे धब्बे बनते हैं, जिनका मध्य भाग हल्का भूरा तथा किनारा लाल-बैंगनी रंग का होता है। नियंत्रण के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें अथवा कार्बेण्डाजिम 500 ग्राम का एक छिड़काव करें। साथ ही गर्मी में गहरी जुताई करें तथा बीजोपचार अवश्य करें।

लोबिया मोजैक रोग

यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है, जिससे पत्तियों का आकार विकृत हो जाता है। नियंत्रण के लिए 0.1 प्रतिशत मेटासिस्टॉक्स या डाइमिथोएट का 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

कीट प्रबंधन

उड़द, मूंग एवं लोबिया में कीटों का प्रकोप विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होता है तथा यह फसल की अवस्था, तापमान, नमी, सूर्य के प्रकाश और वर्षा पर निर्भर करता है:

ग्रीष्मकालीन उड़द

तना मक्खी

इस कीट के प्रकोप से पौधों की ऊपरी दो पत्तियां मुरझा जाती हैं, पौधों में पीलापन आ जाता है तथा प्रभावित भाग फूलकर सड़ने लगते हैं। नियंत्रण के लिए फोरेट से बीजोपचार करने पर 2-4 सप्ताह तक फसल सुरक्षित रहती है। साथ ही बुआई के समय एल्डीकार्ब 10जी या फोरेट 10 जी का 1.6 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से प्रयोग लाभदायक होता है। आवश्यकता होने पर मोनोक्रोटोफॉस 40 ई.सी. 624 मि.ली./हैक्टर या ऑक्सीडिमेटान मिथाइल 25 ई.सी. 750 मि.ली./हैक्टर की दर से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

जैसिड

इसके प्रकोप से पत्तियों पर पीले धब्बे, मरोड़ तथा झुर्रियां दिखाई देती हैं, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है और फलियों की संख्या कम हो जाती है। नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.075 प्रतिशत, फेनिट्रोथियॉन 0.05 प्रतिशत, क्लोरफेनविनफॉस 0.03 प्रतिशत, मैलाथियॉन या डाइमिथोएट का छिड़काव करें अथवा इमिडाक्लोप्रिड 0.5 मि.ली./लीटर पानी की दर से बुआई के 10-15 दिनों बाद छिड़काव करें। समय पर बुआई करने से भी इस कीट का प्रकोप कम किया जा सकता है।

माहूं

इसके प्रकोप से पत्तियों पर पीले या हरे धब्बे, सिकुड़न तथा तनों पर चिपचिपा पदार्थ दिखाई देता है। यह कीट पौधों का रस चूसकर उन्हें कमजोर बना देता है तथा विषाणु रोगों के प्रसार में भी सहायक होता है। नियंत्रण के लिए फेनवेलरेट, साइपरमेथ्रिन एवं डेकामेथ्रिन का छिड़काव प्रभावी पाया गया है। बुआई के समय डाइसल्फोटोन ग्रेन्यूल 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से प्रयोग करने पर लगभग 5 सप्ताह तक नियंत्रण मिलता है।

पत्तीछेदक भृंग

इसके प्रकोप से पत्तियों पर सफेद रंग की सुरंगें या रेखाएं दिखाई देती हैं। प्रभावित

पत्तियां पीली या भूरी होकर सिकुड़ जाती हैं और मुरझा जाती हैं तथा कई बार उनमें छेद भी हो जाते हैं। नियंत्रण के लिए डाइसल्फोटॉन 5 जी का 1.5 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग लाभदायक होता है।

कटाई एवं मड़ाई

जब 80 प्रतिशत से अधिक फलियां पक जाएं, तब हंसिया की सहायता से कटाई कर लेनी चाहिए। अधिक देर से कटाई करने पर फलियों से दाने चटकने की आशंका रहती है। उड़द एवं मूंग की नई प्रजातियां प्राय: एक साथ पकती हैं, जिससे पूरी फसल की कटाई एक साथ की जा सकती है। कटाई के बाद फसल को 3-6 दिनों तक अच्छी तरह सुखाकर मड़ाई करें। बीजों को तब तक धूप में सुखाएं, जब तक उनमें नमी 10-12 प्रतिशत के बीच न रह जाए। लोबिया की कोमल फलियों की तुड़ाई 4-5 दिनों के अंतराल पर नियमित रूप से करें। झाड़ीदार प्रजातियों में 3-4 तुड़ाई तथा बेलदार प्रजातियों में 8-10 तुड़ाई की जा सकती है।

ग्रीष्मकालीन सूरजमुखी

जल प्रबंधन

सूरजमुखी की फसल में आवश्यकता अनुसार सिंचाई करते रहें। जायद में बोई गई सूरजमुखी की फसल में सामान्यत: तीन सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बुआई के 30-35 दिनों बाद करें तथा इसी समय नाइट्रोजन की शेष एक-तिहाई मात्रा का प्रयोग करें। दूसरी सिंचाई 40-45 दिनों बाद, फूल आने की अवस्था में तथा अंतिम सिंचाई बीज बनने की अवस्था में करें। फूल आने के समय मधुमक्खियां प्राकृतिक रूप से अत्यधिक सक्रिय रहती हैं, जो परागण में सहायक होती हैं। इससे पूरे शीर्ष में दाना भराव अच्छा होता है, जिससे उपज एवं बीजों में तेल की मात्रा दोनों में वृद्धि होती है।

सूरजमुखी

खरपतवार प्रबंधन

सूरजमुखी की फसल में प्रारंभिक अवस्था में निराई-गुड़ाई अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। विशेषकर बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली सिंचाई के पश्चात निराई-गुड़ाई अवश्य करें। खरपतवार नियंत्रण हेतु पेण्डीमेथिलीन 3 प्रतिशत ई.सी. का छिड़काव किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त बुआई के 3 तथा 6 सप्ताह बाद दो बार निराई-गुड़ाई करें तथा पौधों पर मृदा चढ़ाने का कार्य भी सुनिश्चित करें।

सूरजमुखी में रोग एवं कीट प्रबंधन

कीट प्रबंधन

जायद में बोई गई सूरजमुखी की फसल में पत्ती खाने वाले कीट (लीफ हॉपर) के नियंत्रण हेतु मोनोक्रोटोफॉस 0.05 प्रतिशत या डाइमिथोएट 0.03 प्रतिशत का छिड़काव करें। रस चूसक कीट जैसे माहूं एवं जैसिड की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड 125 ग्राम/हैक्टर या एसिटामिप्रिड 125 ग्राम/हैक्टर की दर से छिड़काव करें। चेंपा (एफिड्स) के अधिक प्रकोप की स्थिति में मैलाथियॉन 50 ई.सी. की 200 मि.ली. मात्रा को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

सूरजमुखी की फसल में रतुआ, डाउनी मिल्ड्यू, हेड रॉट तथा राइजोपस हेड रॉट जैसे रोगों का प्रकोप देखा जाता है। पत्ती झुलसा रोग के नियंत्रण हेतु मैंकोजेब 3 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। पुष्पण अवस्था पर 2 प्रतिशत बोरेक्स एवं 1 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव करने से दानों का भराव अच्छा होता है तथा तेल की मात्रा में वृद्धि होती है। रोगों की रोकथाम हेतु बुआई से पूर्व बीज का बाविस्टिन या थीरम से उपचार करना सबसे प्रभावी उपाय है।

ग्रीष्मकालीन गन्ना

बुआई

देश के कई राज्यों में मई माह तक ग्रीष्मकालीन गन्ने की बुआई की जाती है, हालांकि इसकी उपज शरदकालीन एवं बसंतकालीन गन्ने की तुलना में अपेक्षाकृत कम होती है। ग्रीष्मकालीन गन्ने की सफलता काफी हद तक पूर्ववर्ती फसल तथा उपयुक्त किस्म के चयन पर निर्भर करती है। बुआई से पूर्व गन्ने के टुकड़ों को 24 घंटे तक पानी में भिगोकर रखने से अंकुरण अच्छा होता है। इस समय बुआई के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी लगभग 60 सें.मी. रखें तथा कूड़ के अंदर टुकड़ों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रखें। बुआई के लगभग 3 माह बाद 60-75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (लगभग 130-163 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें। यदि गन्ना काटने के बाद पुन: गन्ने की बुआई करनी हो, तो पहले पलेवा करके बुआई करें।

किस्मों का चयन

ग्रीष्मकालीन बुआई के लिए सी.ओ. एच.-37 किस्म को मई के प्रथम सप्ताह

गन्ना

गन्ना में पेड़ी प्रबंधन

मुख्य फसल की कटाई के बाद सभी ठूंठों से समान रूप से पेड़ी का फुटाव नहीं होता, जिससे खेत में रिक्त स्थान बन जाते हैं। इन स्थानों की पूर्ति के लिए पहले से तैयार नर्सरी के पौधों को लगाएं या दो-आंखों वाले टुकड़ों से रिक्त स्थान भर दें। पेड़ी फसल से अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु पहली फसल की कटाई के बाद 75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (लगभग 163 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें तथा इतनी ही मात्रा दूसरी एवं तीसरी सिंचाई के समय या कटाई के लगभग 60 दिनों बाद दें। साथ ही 75 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर का प्रयोग भी लाभकारी रहता है। 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करने से पेड़ी फसल की उपज में वृद्धि होती है। पेड़ी फसल में अप्रैल-मई के दौरान काला चिकटा (ब्लैक बग) एवं गुलाबी चिकटा कीट का प्रकोप देखा जाता है, जो पत्तियों का रस चूसकर उन्हें पीला कर देते हैं। इनके नियंत्रण हेतु प्रोफेनोफॉस + साइपरमेथ्रिन (रॉकेट) 400 मि.ली. प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

तक लगाया जा सकता है। यह तेजी से बढ़ने वाली किस्म है, जिसका गन्ना मोटा, नरम एवं रसदार होता है। यह अपेक्षाकृत कमजोर मृदा में भी सिफारिश की गई नाइट्रोजन की आधी मात्रा पर लगभग 320 क्विंटल/हैक्टर उपज तथा 18-20 प्रतिशत तक खांड देती है। अधिक वृद्धि होने पर यह गिरने की आशंका रखती है, इसलिए इसे द्वि-पंक्ति विधि से बोना, समय पर मृदा चढ़ाना तथा बांधना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त सी.ओ.-1148 एवं सी.ओ.एस.-767 किस्में सूखे की स्थिति को अपेक्षाकृत बेहतर सहन कर लेती हैं।

मृदा चढ़ाना

यदि पौधे कुछ बड़े हो गए हों, तो मई माह में गन्ने की फसल पर हल्की मृदा चढ़ा दें। इससे खरपतवार नियंत्रण में सहायता मिलती है तथा फसल गिरने से भी बचती है।

जल प्रबंधन

मई माह में अधिक तापमान एवं तेज हवाओं के कारण गन्ने की फसल में पर्याप्त

गन्ना में रोग एवं कीट प्रबंधन

कीट प्रबंधन

अंकुर बेधक एवं दीमक के नियंत्रण हेतु कूंड को ढकने से पहले बी.एच.सी. 20 ई.सी. की 6 लीटर मात्रा को पानी में घोलकर बोए गए टुकड़ों पर छिड़काव करें। बुआई के समय प्रति एकड़ भूमि में 2 लीटर क्लोरोपायरोफॉस को लगभग 400 लीटर पानी में घोलकर पंक्तियों में डालना भी लाभकारी होता है। अगोला बेधक कीट की रोकथाम हेतु मोनोक्रोटोफॉस 40 ई.सी. की 1.5 लीटर मात्रा या कार्बोफ्यूरॉन 30 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग करें। अप्रैल से जुलाई के बीच रैनेक्सीपायर 20 एस.सी. की 150 मि.ली. मात्रा को 400 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें अथवा जून के अंत में कार्बोफ्यूरॉन 13 कि.ग्रा./एकड़ की दर से प्रयोग करें।

रोग प्रबंधन

गन्ने की फसल को रोगों से बचाने के लिए रोगरोधी किस्मों का चयन करें तथा स्वस्थ बीज का उपयोग करें। समन्वित रोग प्रबंधन अपनाने से रोगों की आशंका कम होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है। रोगग्रस्त गन्ने के पौधों को खेत से निकालकर 0.1 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम का छिड़काव करें।

ग्रीष्मकालीन मूंगफली

बुआई एवं किस्में

सिंचित क्षेत्रों में जायद मूंगफली की बुआई मई के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। इसके लिए मूंगफली-गेहूं फसलचक्र अपनाना लाभकारी रहता है। एक ही खेत में लगातार प्रतिवर्ष मूंगफली की खेती नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे भूमि में रोगों का प्रकोप बढ़ने की आशंका रहती है। सिंचित क्षेत्रों के लिए उन्नत किस्में; एम-522, एम-335 तथा एच.बी.-84 तथा वर्षा पर निर्भर (बारानी) क्षेत्रों के लिए एम-37 उपयुक्त पाई गई हैं।

खरपतवार प्रबंधन

मूंगफली की फसल में खरपतवारों के कारण लगभग 40-45 प्रतिशत तक उपज में कमी हो सकती है। फसल की प्रारंभिक 30-35 दिनों की अवस्था खरपतवारों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है। अत: पहली निराई-गुड़ाई बुआई के 20-25 दिनों बाद तथा दूसरी 35-40 दिनों बाद अवश्य करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई से पूर्व फ्लूक्लोरालिन (बासालिन) या ट्रेफलॉन 0.75-1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से मृदा में मिला दें। यदि बुआई से पूर्व खरपतवारनाशी का प्रयोग न किया गया हो, तो बुआई के 1-3 दिनों के भीतर लासो 1.5-2.0 कि.ग्रा./हैक्टर या पेण्डीमेथिलीन 1.0-1.25 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से छिड़काव करें। खड़ी फसल में चौड़ी पत्ती एवं घास वर्गीय खरपतवारों के नियंत्रण हेतु इमेजेथापायर (10 प्रतिशत एस.एल.) 75-100 ग्राम सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से बुआई के 20-25 दिनों बाद छिड़काव करें।

जल प्रबंधन

स्वस्थ उपज प्राप्त करने के लिए ग्रीष्मकालीन मूंगफली में सामान्यत: 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। फसल में 30-35 दिनों बाद फूल आने प्रारंभ हो जाते हैं, अत: इस अवस्था में दूसरी सिंचाई करें। 45-50 दिनों बाद खूंटी बनने लगती हैं, इसलिए 50-55 दिनों पर तीसरी सिंचाई अवश्य करें। इस समय गहरी सिंचाई करना लाभकारी होता है। खूंटी भूमि में प्रवेश करने लगती हैं और फलियों का निर्माण प्रारंभ होता है। चौथी सिंचाई 70-75 दिनों बाद फलियों में दाना भरने की अवस्था में करें।

पौध संरक्षण

ग्रीष्मकालीन मूंगफली में दीमक एवं फली बेधक के प्रकोप की स्थिति में क्लोरोपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. की 2.5 लीटर मात्रा प्रति हैक्टर की दर से सिंचाई के साथ प्रयोग करें। सूत्रकृमि के नियंत्रण हेतु कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 20 कि.ग्रा. अथवा फोरेट 10 जी 10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना लाभकारी पाया गया है।

नमी बनाए रखना आवश्यक होता है। गन्ने की पूरी फसल अवधि में लगभग 60-70 इंच पानी की आवश्यकता होती है, जिसमें से लगभग आधा पानी वर्षा से प्राप्त हो जाता है। खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। बुआई के लगभग 6 सप्ताह बाद पहली सिंचाई दें। शरदकालीन, बसंतकालीन एवं पेड़ी फसल में मई माह के दौरान लगभग 10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना लाभकारी रहता है।

पानी की कमी की स्थिति में पंक्तियों के बीच गन्ने की सूखी पत्तियों की 7-8 सें.मी. मोटी परत बिछा दें। इससे मृदा में नमी लंबे समय तक बनी रहती है, खरपतवार कम उगते हैं तथा पत्तियां सड़कर जैविक खाद के रूप में भी उपयोगी हो जाती हैं।

कपास

कपास एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है, जिसे व्यावसायिक जगत में 'श्वेत स्वर्ण' के नाम से जाना जाता है।

जलवायु

कपास की अच्छी जमाव के लिए न्यूनतम 16 डिग्री सेल्सियस तापमान आवश्यक होता है। फसल की वृद्धि के समय 21-27 डिग्री सेल्सियस तापमान एवं रात्रि में हल्की ठंडक अनुकूल रहती है। गूलरों के फटने हेतु चमकीली धूप तथा पालारहित मौसम आवश्यक होता है। कपास की रूल खेती के लिए कम से कम 50 सें.मी. वर्षा की आवश्यकता होती है।

कपास

मृदा

कपास की खेती के लिए अच्छी जलधारण क्षमता एवं उचित जलनिकास वाली मृदा उपयुक्त रहती है। जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, वहां बलुई तथा बलुई दोमट मृदा में इसकी सफल खेती की जा सकती है। इसके लिए उपयुक्त

चारा फसलें

फसल प्रबंधन

बरसीम, जई एवं लोबिया की बीज वाली फसल की कटाई समय पर करें तथा 10-12 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। मई माह में हरे चारे के लिए बाजरा, ज्वार एवं मक्का की बुआई की जा सकती है। इन फसलों की बुआई सामान्यत: मार्च के अंत से अप्रैल तक की जाती है, अत: सिंचाई का विशेष ध्यान रखें। प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें तथा नाइट्रोजन की उचित मात्रा का प्रयोग करें, जिससे चारे की वृद्धि अच्छी होती है।

चारा हेतु मक्का

किस्मों का चयन

मई में सिंचित अवस्था में चारे के लिए बाजरा (पीसीबी-141), मकचरी (टी. एल.-1), नेपियर-बाजरा संकर (पी.वी.एन.-233, पी.वी.एन.-83 एवं संकर-21), ज्वार (जे.एम.-20, एच.सी.-136, एच.सी. -171, एच.सी.-260, एच.सी.-308, एस.एल.-44 एवं पंजाब सूडेक्स चरी-1), मक्का (जे. -1006, प्रभात, प्रताप, केसरी एवं मेघा), गिनी घास (पी.जी.जी.-518 एवं पी.जी.जी.-101), ग्वार (एफ.एस.-277 एवं ग्वार-80) तथा लोबिया (लोबिया-88 एवं लोबिया-90) की बुआई उपयुक्त रहती है। चारे की फसलों को मिश्रित रूप में बोने से चारा अधिक पौष्टिक प्राप्त होता है तथा उपज एवं कटाइयों की संख्या भी बढ़ती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

मिश्रित चारे की बुआई से पहले बीज को रोगों से बचाव हेतु उपचारित कर लें। इसके बाद खेत की 2-3 बार जुताई करके लगभग 10 टन गोबर की सड़ी खाद तथा एक बोरा यूरिया प्रति हैक्टर की दर से डालकर बीज छिड़काव विधि से बुआई करें। ज्वार की एक कटाई वाली प्रजातियों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा पहली सिंचाई के बाद दें। बहुकटाई वाली चरी में 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (लगभग 65 कि.ग्रा. यूरिया) तथा मक्का में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (लगभग 87 कि.ग्रा. यूरिया) बुआई के लगभग 30 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग करें। प्रत्येक कटाई के बाद शेष नाइट्रोजन समान मात्रा में देने से हरे चारे की वृद्धि अच्छी होती है।

कटाई

फसल की अच्छी वृद्धि होने पर आवश्यकतानुसार समय-समय पर कटाई करते रहें। प्रत्येक कटाई के बाद लगभग आधा बोरा यूरिया का प्रयोग करने से अगली बढ़वार तेज होती है और चारे की गुणवत्ता में सुधार होता है।

कपास की प्रजातियां

विभिन्न क्षेत्रों के लिए **अमेरिकन कपास** की उन्नत प्रजातियां: एफ-286, एल.एस. -886, एफ-414, एफ-846, एफ-1861, एल.एच.-1556, पूसा 8-6, एफ-1378, एच.1117, एच.एस.-45, एच.एस.-6, एच.-1098,सी.एन.एच.-36, रजत, गुजरात कॉटन-12, 14 एवं 16 आदि उपयुक्त पाई गई हैं। **संकर कपास** की प्रमुख प्रजातियां: फतेह, एल.डी.एच.-11, एल.एच.-144, धनलक्ष्मी, एच.एच.एच.-223, सी.एस.ए.ए.-2, उमाशंकर, जे.के.एच.वाई.-1 आदि हैं। **बी.टी. कपास** की प्रजातियां: आर.सी.एच.-308, आर.सी.एच.-314, आर.सी.एच.-134, आर.सी.एच.-317, एम.आर.सी.-6301 एवं एम.आर.सी.-6304 तथा **देसी कपास** (गोसीपियम आर्बोरियम) की प्रजातियां एच.-777, एच.डी.-1, एच.-974, एच.डी.-107, डी.एस.-5, एल.डी.-694, एल.डी.-327, एल.डी. -230, एल.डी.-491, पी.ए.यू.-626, मोती, आर.जी.-8, रोहिणी, गुजरात कॉटन-15 एवं 11 आदि देश के विभिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं।

मृदा पी-एच मान 5.5-6.0 है, हालांकि इसकी खेती 8.5 पी-एच तक की मृदा में भी की जा सकती है।

फसल पद्धति

सिंचित क्षेत्रों में कपास-सूरजमुखी, कपास-मूंगफली, कपास-बरसीम/जई तथा कपास-गेहूं/जौ प्रमुख फसलचक्र हैं। उत्तर भारत में कपास-मटर, कपास-ज्वार तथा कपास-गेहूं तथा दक्षिण भारत में कपास-ज्वार, कपास-मूंगफली, धान-कपास एवं कपास-धान प्रमुख फसलचक्र अपनाए जाते हैं। उत्तर भारत में कपास के बाद गेहूं लेने के लिए शीघ्र पकने वाली कपास की प्रजातियां तथा देर से बोई जाने वाली गेहूं की प्रजातियां उपयुक्त रहती हैं।

बुआई

अमेरिकन कपास की बुआई देसी कपास से कुछ पहले की जाती है। पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में इसकी बुआई सामान्यत: गेहूं की कटाई के बाद अप्रैल-मई में की जाती है। पंक्तियों में बुआई करना अधिक लाभकारी रहता है, जिसके लिए सीड ड्रिल या देसी हल के पीछे कूड़ में बीज बोया जाता है।

अमेरिकन, संकर तथा देसी कपास के लिए क्रमश: 15-20, 2-2.5 तथा 15-16 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। अमेरिकन एवं देसी कपास के लिए 60×30 सें.मी. तथा संकर प्रजातियों के लिए 90×60 सें.मी. दूरी उपयुक्त रहती है।

बीज उपचार

बीज को कार्बेण्डाजिम 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें, जिससे राइजोक्टोनिया जड़ गलन, फ्यूजेरियम उकठा एवं अन्य मृदाजनित रोगों से सुरक्षा मिलती है। इसके अतिरिक्त इमिडाक्लोप्रिड 7 ग्राम या कार्बोसल्फॉन 20 ग्राम/कि.ग्रा. बीज उपचार करने से 40-60 दिनों तक रस चूसक कीटों से सुरक्षा मिलती है। दीमक से बचाव के लिए क्लोरोपायरीफॉस 10 मि.ली. को 10 मि.ली. पानी में मिलाकर बीज पर छिड़काव कर छाया में सुखाकर बुआई करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें। देसी प्रजातियों के लिए 50-70 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर, अमेरिकन प्रजातियों के लिए 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 20-30 कि.ग्रा. पोटाश तथा संकर प्रजातियों के लिए 150-60-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश प्रति हैक्टर आवश्यक होते हैं। इसके अतिरिक्त 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर का प्रयोग लाभकारी रहता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा अन्य उर्वरकों की पूरी मात्रा बुआई के समय दें तथा शेष नाइट्रोजन पुष्पण अवस्था में सिंचाई के बाद दें।

जल प्रबंधन

कपास की फसल में सामान्यत: 3-4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। सिंचाई मृदा की नमी के अनुसार करें तथा अंतिम सिंचाई एक-तिहाई टिंडे खुलने की अवस्था पर करें।

खरपतवार प्रबंधन

कपास की अच्छी उपज के लिए प्रभावी खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। फसल वृद्धि के समय 3-4 बार गुड़ाई बैलचालित त्रिफाली या ट्रैक्टरचालित कल्टीवेटर से करें। पहली गुड़ाई बुआई के 30-35 दिनों बाद, पहली सिंचाई से पूर्व करें। फूल एवं गूलर बनने की अवस्था में कल्टीवेटर के स्थान पर खुरपी से निराई करें। खरपतवार नियंत्रण हेतु पेण्डीमेथिलीन 3.3 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से जमाव से पूर्व या बुआई के 2-3 दिनों के भीतर प्रयोग करें।

धान की नर्सरी

भूमि का चयन

स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौध तैयार करने के लिए उचित जल-निकास वाली तथा उच्च पोषक तत्वों से युक्त दोमट मृदा का चयन करें। नर्सरी का स्थान सिंचाई स्रोत के निकट होना चाहिए। सामान्यत: बुआई से लगभग एक माह पूर्व नर्सरी की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए। नर्सरी क्षेत्र में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करके खरपतवारों को उगने दें तथा बाद में हल चलाकर या अवरणात्मक (नॉन-सेलेक्टिव) खरपतवारनाशी जैसे पैराक्वाट या ग्लाइफोसेट 1 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से छिड़काव कर उन्हें नष्ट कर दें। इससे मुख्य खेत में भी खरपतवारों की समस्या कम होती है। मई-जून में 3-4 बार गहरी जुताई कर खेत को खाली छोड़ने से मृदाजनित रोगों की आशंका कम हो जाती है।

धान की नर्सरी

बीज चयन

बीज का चयन सावधानीपूर्वक करें तथा सदैव आधारभूत या प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें। ऐसे बीजों में अच्छी अंकुरण क्षमता, किस्म की शुद्धता एवं रोगमुक्तता सुनिश्चित रहती है।

क्यारी प्रबंधन

धान की पौध तैयार करने के लिए सामान्यत: 8 मीटर लंबी एवं 1.5 मीटर चौड़ी क्यारियां बनाएं। अंकुरण के प्रारंभिक 2-3 दिनों तक अंकुरित बीजों को पुआल से ढककर रखें तथा नवपौध हरी होने तक पक्षियों से बचाव हेतु विशेष सावधानी बरतें।

बीजदर एवं बीजोपचार

धान की नर्सरी के लिए मध्यम अवधि की किस्मों हेतु लगभग 40 कि.ग्रा., मोटे धान के लिए 45 कि.ग्रा. तथा बासमती प्रजातियों के लिए लगभग 20-25 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। बुआई से पूर्व बीज को 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा या 2.5 ग्राम कार्बेण्डाजिम अथवा थीरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। जहां जीवाणु झुलसा या जीवाणुजनित रोग की समस्या हो, वहां 25 कि.ग्रा. बीज के लिए 4 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या 40 ग्राम प्लांटोमाइसिन को पानी में मिलाकर बीज को रात भर भिगो दें तथा 24-36 घंटे तक जमाव होने दें। बीच-बीच में पानी का हल्का छिड़काव करते रहें तथा अगले दिनों छाया में सुखाकर नर्सरी में बुआई करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

अच्छी एवं स्वस्थ पौध तैयार करने के लिए संतुलित पोषक तत्वों का प्रयोग आवश्यक है। 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र के लिए लगभग 10 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद, 10 कि.ग्रा. डाइअमोनियम फॉस्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट जुताई से पहले मृदा में अच्छी तरह मिला दें। यदि 10-12 दिनों बाद पौध का रंग हल्का पीला दिखाई दे, तो एक सप्ताह के अंतराल पर दो बार 10 कि.ग्रा. यूरिया प्रति 1000 वर्ग मीटर की दर से छिड़काव या ऊपर से मिला दें, जिससे पौध की वृद्धि अच्छी होती है।

खरपतवार प्रबंधन

बुआई के 1-2 दिनों बाद पायराजोसल्फ्यूरॉन 250 ग्राम/हैक्टर की दर से पौध निकलने से पूर्व छिड़काव करें। इसके लिए खरपतवारनाशी को 10-15 कि.ग्रा. रेत प्रति 1000 वर्ग मीटर

में मिलाकर नर्सरी क्यारियों पर समान रूप से फैलाएं तथा क्यारियों में 1-2 सें.मी. पानी बनाए रखें, जिससे खरपतवारनाशी का समान वितरण हो सके।

हरी खाद फसलें

दलहनी एवं गैर-दलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि काल में उपयुक्त समय पर जुताई करके मृदा में दबा देना हरी खाद देना कहलाता है। इससे मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का विशेष महत्व है। इनकी जड़ों में उपस्थित सहजीवी जीवाणु ग्रंथियां वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करके पौधों को उपलब्ध करवाती हैं। फसल के उपयोग के बाद शेष नाइट्रोजन मृदा में रह जाती है, जिसका लाभ अगली फसल को मिलता है।

उपयुक्त फसलें

हरी खाद के लिए ढैंचा एवं सनई की बुआई भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिए अत्यंत उपयोगी होती है। इन फसलों से लगभग 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त मूंग, उड़द, अरहर, चना, मसूर, मटर, लोबिया, मोठ, खेसारी तथा कुल्थी जैसी दलहनी फसलें भी हरी खाद के रूप में उपयोगी हैं। हरी खाद की फसलों का चयन स्थानीय भूमि, जलवायु एवं उद्देश्य को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

हरी खाद ढैंचा

हरी खाद वाली फसलों के वांछनीय गुण

हरी खाद के लिए ऐसी फसलें उपयुक्त होती हैं, जिनके तने, शाखाएं एवं पत्तियां कोमल और अधिक मात्रा में हों, ताकि उनका शीघ्र अपघटन होकर मृदा में अधिक जीवांश एवं नाइट्रोजन की वृद्धि हो सके। ऐसी फसलें शीघ्र बढ़ने वाली, सूखा-सहनशील तथा जलभराव सहन करने वाली होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त मूसला जड़ प्रणाली वाली फसलें अधिक उपयुक्त रहती हैं, क्योंकि वे गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण करती हैं तथा क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं में अंत:जल निकास सुधारने में सहायक होती हैं। साथ ही इन फसलों में रोग एवं कीटों का प्रकोप कम हो तथा बीज उत्पादन क्षमता अधिक होनी चाहिए।

बुआई एवं प्रबंधन

ढैंचा या सनई की बुआई के लिए लगभग 60 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बुआई से पूर्व बीज को लगभग 12 घंटे पानी में भिगोने से अंकुरण अच्छा एवं शीघ्र होता है। हरी खाद की फसलें सामान्यत: बुआई के 35-40 दिनों के भीतर पलटने योग्य हो जाती हैं। अत: खरीफ में धान की रोपाई के समय को ध्यान में रखते हुए ढैंचा, सनई एवं लोबिया की समय पर बुआई करें।

मृदा परीक्षण

मृदा परीक्षण कराने का यह उपयुक्त समय है। मृदा परीक्षण मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, पी-एच मान तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्थिति जानने के लिए मृदा नमूनों का वैज्ञानिक विश्लेषण है। मृदा परीक्षण के माध्यम से किसान अपनी भूमि की वर्तमान उर्वरता स्थिति को समझकर आवश्यक सुधारात्मक उपाय कर सकते हैं तथा संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। इसके आधार पर उपयुक्त फसल एवं फसलचक्र का चयन भी किया जा सकता है।

मृदा नमूना लेने की विधि

एक हैक्टर क्षेत्र से लगभग 10-15 स्थानों से 15 सें.मी. गहराई तक खुरपी या फावड़े की सहायता से मृदा नमूने एकत्र करें। नमूने खेत के किनारे, खाद के ढेर, सिंचाई की नाली या छायादार स्थानों के पास से न लें:

- एकत्रित सभी नमूनों को आपस में अच्छी तरह मिलाकर उसमें से लगभग 500 ग्राम प्रतिनिधि नमूना साफ कपड़े की थैली में भरकर आवश्यक विवरण सहित मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में भेजें।
- परीक्षण के पश्चात मृदा स्वास्थ्य कार्ड अवश्य प्राप्त करें, ताकि आगामी खरीफ फसलों में मृदा की स्थिति के अनुसार उर्वरकों का संतुलित प्रयोग किया जा सके।

मचान विधि से लौकी उत्पादन

कद्दूवर्गीय सब्जी फसलें

फसल प्रबंधन

कद्दूवर्गीय फसलें जैसे (लौकी, कद्दू, तोरई, काशीफल, ककड़ी, तरबूज एवं खरबूजा की बुआई सामान्यत: मार्च-अप्रैल में की जा चुकी होती है। इस समय खेतों में हरी फसलों की उपलब्धता कम होने के कारण कीटों के वैकल्पिक मेजबान पौधे कम रहते हैं, जिससे इन फसलों पर कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है। अत: इस अवस्था में फसल की नियमित निगरानी करते हुए कीट एवं रोग नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

सिंचाई प्रबंधन

ग्रीष्मकाल में विशेषकर मई माह के दौरान कद्दूवर्गीय फसलों में 5-8 दिनों के अंतराल पर आवश्यकता अनुसार सिंचाई करते रहना चाहिए, जिससे पौधों की वृद्धि एवं फल विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

कीट प्रबंधन

कद्दूवर्गीय फसलों में फल मक्खी एवं लाल कद्दू भृंग प्रमुख कीट हैं। इनके नियंत्रण के लिए कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। ध्यान रखें कि कीटनाशी का छिड़काव फल तुड़ाई के बाद ही करें।

सारणी: प्रमुख हरी खाद फसलों से प्राप्त नाइट्रोजन एवं हरे पदार्थ की मात्रा

फसल	प्राप्त नाइट्रोजन (कि.ग्रा./हैक्टर)	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	हरे पदार्थ की मात्रा (टन/हैक्टर)
ढैंचा	84-105	0.42	20-25
लोबिया	74-88	0.49	15-18
मूंग	38-48	0.48	8-10
उड़द	41-49	0.41	10-12
सनई	86-129	0.43	20-30
ग्वार	68-85	0.34	20-25
कुल्थी	26-33	0.33	8-10

रोग प्रबंधन

कद्दूवर्गीय फसलों में मृदु रोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू), चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) तथा जड़ विगलन जैसे प्रमुख रोग फफूंदजनित होते हैं। इनके नियंत्रण हेतु रोगग्रस्त फसल अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें। मृदुल रोमिल आसिता के नियंत्रण के लिए मैंकोजेब 2.5 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। चूर्णिल आसिता (बुकनी रोग) के नियंत्रण हेतु कैराथेन 1 लीटर या घुलनशील गंधक 3 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से लगभग 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना लाभकारी होता है।

भिंडी

सिंचाई प्रबंधन

भिंडी की बुआई सामान्यत: फरवरी-मार्च में की जाती है। इस समय फसल पुष्पण एवं फली विकास की अवस्था में रहती है। अत: आवश्यकता अनुसार 10-12 दिनों के अंतराल पर नियमित सिंचाई करते रहना चाहिए, जिससे फलियों का विकास अच्छा होता है।

रोग प्रबंधन

भिंडी की फसल में पीली चितेरी (मोजैक) एवं पर्ण कुंचन (लीफ कर्ल) रोग का प्रकोप प्राय: श्वेत मक्खी द्वारा फैलता है। मोजैक रोग में पत्तियों पर छोटे-छोटे पीले चितकबरे धब्बे दिखाई देते हैं तथा पत्तियों की शिराएं पीली पड़ जाती हैं। लीफ कर्ल रोग में पत्तियां सिकुड़कर विकृत हो जाती हैं। इनके नियंत्रण हेतु एसिटामिप्रिड 3 ग्राम/10 लीटर पानी या कन्फीडोर 200 एस.एल. 0.3-0.5 मि.ली./लीटर पानी की दर से बुआई के लगभग 20 दिनों बाद छिड़काव करें तथा आवश्यकता अनुसार 15 दिनों के अंतराल पर पुन: छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त स्पाइरोमेसिफेन 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव भी प्रभावी पाया गया है।

कीट प्रबंधन

भिंडी में फली एवं तनाछेदक कीट फलियों में छेद कर अंदर के बीज को नुकसान पहुंचाता है, जिससे फलियां खाने योग्य नहीं रहती। यह कीट पौधों की कोमल शाखाओं में भी छेद कर देता है, जिससे ऊपरी भाग मुरझा जाता है। इसके नियंत्रण हेतु एमामेक्टिन बेन्जोएट 2 ग्राम/10 लीटर पानी या स्पिनोसैड 1 मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। इसके साथ ही अंडा-परजीवी ट्राइकोग्रामा के लगभग 50,000 कार्ड प्रति हैक्टर की दर से खेत में छोड़ने से इस कीट का प्रकोप कम किया जा सकता है।

लाल भिंडी

पत्तियां काटने वाले कीट के नियंत्रण हेतु साइपरमेथ्रिन 0.5 मि.ली./लीटर पानी की दर से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना लाभकारी रहता है।

अदरक

बुआई

अदरक की बुआई के लिए लगभग 16-18 क्विंटल प्रकंद प्रति हैक्टर पर्याप्त होते हैं। बुआई 30×20 सें.मी. की दूरी तथा लगभग 4 सें.मी. गहराई पर करें। बुआई से पूर्व 20-25 ग्राम वजन के प्रकंद टुकड़ों को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत घोल से उपचारित करना लाभकारी रहता है।

अदरक

किस्मों का चयन एवं पोषक तत्व प्रबंधन

अदरक की उन्नत किस्में

सुप्रभा, सुरभि, सुरूचि एवं हिमगिरी खेती के लिए उपयुक्त हैं। खेत की तैयारी

मृदा की गहरी जुताई

गर्मी के मौसम में मृदा पलटने वाले हल से गहरी जुताई करने पर मृदा की ऊपरी एवं निचली परतें आपस में बदल जाती हैं। इस प्रक्रिया से बनने वाले ढेले धीरे-धीरे हवा एवं वर्षा के पानी के प्रभाव से टूट जाते हैं। साथ ही जुताई के दौरान फसल अवशेष, पौधों की जड़ें तथा खेत में उगे खरपतवार मृदा के भीतर दब जाते हैं, जो सड़कर कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाते हैं। इससे मृदा की उर्वरता, भौतिक दशा एवं संरचना में सुधार होता है। ग्रीष्मकालीन जुताई के प्रमुख लाभ निम्न हैं:

- मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है।
- मृदा के पलटने से वायु एवं सूर्य के प्रकाश का प्रभाव बढ़ता है, जिससे मृदा में उपलब्ध खनिज तत्व पौधों के लिए अधिक सुलभ हो जाते हैं।
- ग्रीष्मकालीन जुताई रोग एवं कीट नियंत्रण में सहायक होती है। अनेक हानिकारक कीट एवं रोगजनक सतह पर आकर तेज धूप के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।
- इससे मृदा में सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ती है, जो विशेष रूप से दलहनी फसलों के लिए लाभकारी होती है।
- खरपतवार नियंत्रण में भी ग्रीष्मकालीन जुताई प्रभावी सिद्ध होती है, क्योंकि खरपतवारों के बीज तेज गर्मी एवं धूप से नष्ट हो जाते हैं।
- बारानी परिस्थितियों में वर्षा जल के अधिकतम संचयन हेतु ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई अत्यंत आवश्यक होती है। शोधों से यह सिद्ध हुआ है कि ग्रीष्मकालीन जुताई से लगभग 31.3 प्रतिशत तक वर्षा जल का संचयन संभव होता है।
- ग्रीष्मकालीन जुताई से मृदा कटाव में लगभग 66.5 प्रतिशत तक कमी आती है।
- गोबर की खाद एवं अन्य कार्बनिक पदार्थों का मृदा में समुचित मिश्रण हो जाता है, जिससे पोषक तत्व शीघ्रता से फसलों को उपलब्ध होते हैं।

हल्दी

बुआई

हल्दी की बुआई के लिए लगभग 15-20 क्विंटल प्रकंद प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। बुआई 40×20 सें.मी. की दूरी तथा लगभग 4 सें.मी. गहराई पर करें। बुआई से पूर्व 20-25 ग्राम वजन के प्रकंद टुकड़ों को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत घोल से उपचारित करके ही बुआई करें, जिससे रोगों का प्रकोप कम होता है और अंकुरण बेहतर होता है।

किस्मों का चयन

हल्दी की उन्नत किस्में: कृष्णा, राजेन्द्र, कस्तूरी, पास्पु, सोनिया, सुगना, अमलापुरम एवं मधुकर खेती के लिए उपयुक्त पाई गई हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

हल्दी की अच्छी वृद्धि के लिए खेत की तैयारी के समय लगभग 75 क्विंटल नाडेप खाद या 200-250 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से डालें। इसके साथ 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 80 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से अंतिम जुताई के समय मृदा में मिला दें।

के समय लगभग 75 क्विंटल नाडेप खाद या 200-250 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से डालें। इसके साथ 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 100 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से अंतिम जुताई के समय मृदा में मिला दें।

मल्चिंग एवं अन्य प्रबंधन

अदरक, हल्दी एवं सूरन की बुआई के बाद खेत को सूखी पुआल, घास-फूस या सूखी पत्तियों से ढक दें। इससे मृदा में नमी बनी रहती है तथा अंकुरण अच्छा होता है। इस माह सूरन की बुआई का कार्य भी पूर्ण कर लेना चाहिए।

टमाटर, बैंगन एवं मिर्च

जलवायु एवं मृदा

टमाटर, बैंगन एवं मिर्च की अच्छी वृद्धि

टमाटर

एवं उपज के लिए 21-30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। इनकी खेती के लिए अच्छी जलनिकास वाली बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। मृदा का पी-एच मान लगभग 6-7 के बीच होना चाहिए।

बुआई एवं नर्सरी प्रबंधन

बैंगन की नर्सरी हेतु बीज की बुआई मई-जून में की जाती है तथा पौधों की रोपाई जून से मध्य जुलाई तक की जाती है। बुआई के बाद नर्सरी क्यारी को पुआल या घास से ढकने से अंकुरण अच्छा होता है। बीज बुआई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई अवश्य करें। मई माह के दूसरे सप्ताह में मिर्च की नर्सरी भी तैयार की जा सकती है। लगभग 400 ग्राम बीज एक एकड़ क्षेत्र में रोपाई हेतु पर्याप्त होता है। रोगों से बचाव के लिए बीज को कैप्टॉन या थीरम 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

किस्मों का चयन एवं बीजदर

बैंगन की **गोल आकार** वाली उन्नत किस्में: पूसा संकर-6, पूसा संकर-9, पूसा उत्तम एवं पूसा उपकार तथा **लंबी किस्में** पूसा संकर-5, पूसा संकर-20, पूसा श्यामला, पूसा कौशल एवं पूसा क्रांति तथा **छोटे गोल आकार** वाली किस्में पूसा अंकुर एवं पूसा बिंदु प्रमुख हैं। **सामान्य किस्मों** के लिए लगभग 400 ग्राम तथा संकर किस्मों के लिए 250-300 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

बैंगन

मृदा सौरीकरण एवं समतलीकरण

ग्रीष्मकालीन जुताई करने से खरीफ फसलों की बुआई के लिए खेत की तैयारी सरल एवं शीघ्र हो जाती है। यदि गहरी जुताई संभव न हो, तो मृदा सौरीकरण भी किया जा सकता है। इसके लिए भूमि की सतह पर पारदर्शी पॉलीथीन शीट बिछा दें। इससे मृदा की ऊपरी परत का तापमान बढ़ जाता है, जिससे रोगजनक जीवाणु, कीटों के अंडे तथा खरपतवारों के बीज नष्ट हो जाते हैं। यदि खेत समतल न हो, तो इस माह लेवलर की सहायता से खेत का समतलीकरण कर लें। इससे सिंचाई के समय पानी का समान वितरण होता है तथा जल की बचत के साथ फसल की वृद्धि भी बेहतर होती है।

मिर्च की उन्नत किस्में

पूसा सदाबहार एवं पूसा ज्वाला अच्छी उपज देने वाली प्रमुख किस्में हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

खेत की तैयारी के समय लगभग 25 टन सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट खाद प्रति हैक्टर की दर से मृदा में मिला दें। इसके साथ लगभग 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा अंतिम जुताई के समय तथा शेष आधी मात्रा फूल आने की अवस्था में टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें।

मार्च में रोपी गई टमाटर, बैंगन एवं मिर्च की फसल में आवश्यकता अनुसार सिंचाई करते रहें तथा टमाटर एवं मिर्च में रोपाई के लगभग 45-50 दिनों बाद 35 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से दूसरी टॉप ड्रेसिंग करें।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार नियंत्रण हेतु पेण्डीमेथिलीन (स्टॉम्प) 3 लीटर/हैक्टर की दर से पौध रोपाई से पहले प्रयोग करें। छिड़काव से पूर्व खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त समय-समय पर निराई-गुड़ाई भी करें। रोपाई से पहले पौधों की जड़ों को कॉन्फिडोर के घोल से उपचारित करना लाभकारी रहता है।

कीट प्रबंधन

यदि खेत में तंबाकू की सुंडी का प्रकोप दिखाई दे, तो फेरोमोन ट्रैप लगाकर कीटों की निगरानी एवं नियंत्रण करें। श्वेत मक्खी रस चूसक कीट होने के साथ-साथ विषाणु रोगों का प्रसार भी करती है। इसके नियंत्रण हेतु कॉन्फिडोर 0.3 मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

टमाटर एवं बैंगन में फलछेदक सुंडी के नियंत्रण हेतु फल तुड़ाई के बाद डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. 1 मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। बैंगन में तना एवं फलबेधक एक गंभीर कीट है। इसके नियंत्रण हेतु 100 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर की दर से 10 मीटर की दूरी पर लगाएं तथा संक्रमित प्ररोह एवं फल निकालकर नष्ट कर दें। पेड़ी फसल न लें, क्योंकि इसमें फल छेदक का प्रकोप अधिक होता है।

नीम बीज अर्क (5 प्रतिशत), बी.टी. 1 ग्राम/लीटर, स्पिनोसैड 45 एस.सी. 1 मि.ली./4 लीटर या कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से फूल आने से पहले छिड़काव करना लाभकारी होता है।

अन्य पौध संरक्षण उपाय

अधिक वृद्धि करने वाली किस्मों में पौधों को सहारा (स्टैकिंग) अवश्य दें। टमाटर के फलों को फटने से बचाने हेतु नियमित सिंचाई करें तथा 0.3-0.4 प्रतिशत बोरोन का छिड़काव लाभकारी रहता है।

इसके अतिरिक्त टमाटर के फलों को सफेदपन से बचाने के लिए पंक्तियों के बीच सनई या ढैंचा की बुआई करना तथा अधिक पत्तियों वाली किस्मों का चयन करना उपयोगी रहता है।

फूलगोभी

किस्मों का चयन

फूलगोभी की अगेती फसल के लिए पूसा कार्तिक संकर, पूसा दीपाली, पूसा कार्तिकी, पूसा अश्विनी एवं पूसा मेघना प्रमुख उन्नत किस्में हैं।

बीजदर एवं बुआई

सामान्य किस्मों के लिए 500-600 ग्राम तथा संकर किस्मों के लिए 350-400 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। अगेती फूलगोभी की नर्सरी हेतु बीज की बुआई मध्य मई से जून तक की जाती है तथा लगभग

फूलगोभी

5-6 सप्ताह की पौध रोपाई के लिए उपयुक्त रहती है।

बीजोपचार हेतु बाविस्टिन या कैप्टॉन 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से अथवा ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करें। नर्सरी क्यारी छायादार एवं पर्याप्त नमी वाले स्थान पर तैयार करें। सामान्यत: 3.0×0.45×0.15 मीटर आकार की नर्सरी क्यारी उपयुक्त रहती हैं तथा 100 वर्ग मीटर नर्सरी क्षेत्र एक हैक्टर रोपाई के लिए पर्याप्त होता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

खेत की तैयारी के समय 25-30 टन सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से मृदा में मिला दें। इसके अतिरिक्त 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 100 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से दें। अंतिम जुताई के समय नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा मृदा में मिला दें।

शेष नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में बांटकर पहला भाग रोपाई के लगभग एक माह बाद निराई-गुड़ाई के समय तथा दूसरा भाग फूल बनने की अवस्था में पौधों को मृदा चढ़ाते समय दें।

खरपतवार नियंत्रण एवं जल प्रबंधन

खरपतवार नियंत्रण हेतु रोपाई से पहले बेसालिन 2.5 लीटर या स्टॉम्प 3.3 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें तथा हल्की सिंचाई करें। अगेती फसल में रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई करें तथा उसके बाद साप्ताहिक अंतराल पर सिंचाई करते रहें। मध्यम एवं पछेती फसल में 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना उपयुक्त रहता है।

रोग प्रबंधन

फूलगोभी की नर्सरी अवस्था में आर्द्रगलन रोग (डैम्पिंग ऑफ) का प्रकोप सामान्यत: देखा जाता है, जिसमें पौधों का तना भूमि सतह के पास से गलने लगता है और पौधे नष्ट हो जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें या 25 ग्राम ट्राइकोडर्मा को 10 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर 100 वर्ग मीटर नर्सरी क्षेत्र में समान रूप से मिला दें। इसके अतिरिक्त बाविस्टिन या कैप्टॉन 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार अथवा 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव भी प्रभावी रहता है।

बीजोत्पादन हेतु विशेष कार्य

बीजोत्पादन के लिए फूलगोभी, गांठगोभी, पत्तागोभी, गाजर, मूली, पालक, मेथी एवं शलजम की बीज वाली फसलों की कटाई इस माह पूर्ण कर लें तथा बीजों को अच्छी तरह सुखाकर उनमें नमी की मात्रा लगभग 8 प्रतिशत तक कर लें।

बागवानी फसलें

नए बाग की स्थापना

नए बाग लगाने के लिए गड्ढों की खुदाई इस माह कर लें, ताकि तेज धूप के

अमरूद

अमरूद की सघन बागवानी वर्तमान में किसानों के बीच लोकप्रिय हो रही है, जिसमें पौधों को 1×2 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। जिन नई शाखाओं पर पुष्प आ रहे हों, उनकी लगभग आधी लंबाई तक छंटाई कर दें। इससे वर्षा ऋतु की फसल कम होती है, जबकि रबी मौसम की फसल में वृद्धि होती है। पुष्पण अवस्था में 10 प्रतिशत यूरिया के घोल का 10-15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करने से जायद मौसम में 3-8 गुना तक अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। बहार नियंत्रण हेतु अप्रैल-मई में 10 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव फूलों पर करें। तेज धूप से झुलसने से बचाव के लिए पेड़ों के तनों एवं मुख्य शाखाओं पर कॉपर एवं चूने का लेप लगाना लाभकारी होता है।

प्रभाव से कीट एवं रोगकारकों का नियंत्रण हो सके। माह के अंत में इन गड्ढों को ऊपर की आधी उपजाऊ मृदा तथा आधी कम्पोस्ट खाद में क्लोरोपायरीफॉस मिलाकर भर दें।

सिंचाई एवं सामान्य प्रबंधन

ग्रीष्म ऋतु में तापमान अधिक होने के कारण बागवानी फसलों में उचित जल प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। अत: आवश्यकतानुसार 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें तथा समय-समय पर कटाई-छंटाई का कार्य भी करते रहें।

आम, अमरूद, पपीता, लीची, अंगूर, आंवला, बेर, नाशपाती, आलूबुखारा एवं नीबू आदि फलों के बागों में आवश्यकता अनुसार नियमित सिंचाई करें।

अंगूर

गर्मी के मौसम में अंगूर के बागों में लगभग एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई करें। एन्थ्रेक्नोज एवं सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा रोग की रोकथाम हेतु फाइटालोन या ब्लाइटॉक्स 0.3 प्रतिशत (लगभग 750 ग्राम/250 लीटर पानी प्रति एकड़) का छिड़काव मई के प्रथम सप्ताह में करें तथा 15 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार दोहराएं।

आम

आम में दासी मक्खी के नियंत्रण हेतु कार्बोरिल 0.2 प्रतिशत + शर्करा 0.1 प्रतिशत + मैलाथियॉन 0.1 प्रतिशत का मिश्रण बनाकर ट्रैप तैयार कर बाग में लटकाएं। पाउडरी मिल्ड्यू रोग के नियंत्रण हेतु घुलनशील गंधक 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें। कोइलिया फल विकार के नियंत्रण हेतु फल लगने के बाद बोरेक्स 1 प्रतिशत का छिड़काव करें। ऊतक क्षय रोग से बचाव हेतु 8 ग्राम बोरेक्स प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। फलों के झड़ने की समस्या कम करने हेतु एन.ए.ए. 20 पीपीएम का छिड़काव लाभकारी रहता है।

पुष्प एवं सगंधीय पौधे

रजनीगंधा

रजनीगंधा में एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई तथा दो सप्ताह के अंतराल पर निराई-गुड़ाई करते रहें। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में कंद रोपण का उपयुक्त समय फरवरी के अंतिम सप्ताह से जुलाई तथा पहाड़ी क्षेत्रों में मई-जून तक रहता है। रोपण 30-40 सें.मी. पंक्ति दूरी एवं 15-20 सें.मी. पौधे की दूरी पर करें। एक एकड़ क्षेत्र के लिए लगभग 50-60 हजार कंद पर्याप्त होते हैं। बेहतर पुष्प डंडियों के लिए 3-5 सें.मी. व्यास के स्वस्थ कंद लगाएं तथा रोपण के समय खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखें।

रजनीगंधा

गुलाब

गुलाब की फसल में आवश्यकता अनुसार नियमित सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करते रहें, जिससे पौधों की वृद्धि अच्छी बनी रहती है।

गुलाब

चाइना एस्टर, गेंदा एवं कॉरनेशन

इन फसलों में शीर्ष नोचन (पिंचिंग) का कार्य करें, जिससे अधिक शाखाएं विकसित होती हैं और पुष्प उत्पादन में वृद्धि होती है।

लिलियम

लिलियम की फसल में तैयार पुष्पों की तुड़ाई समय पर प्रारंभ कर दें, जिससे गुणवत्ता बनी रहती है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

यदि पुष्प फसलों में कीट या रोग का प्रकोप दिखाई दे, तो 0.2 प्रतिशत कैप्टॉन या बाविस्टिन का घोल बनाकर छिड़काव करें। कीट नियंत्रण हेतु 0.2 प्रतिशत रोगोर या मेटासिस्टॉक्स का घोल बनाकर 20-25 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना लाभकारी रहता है।

ग्लैडियोलस

ग्लैडियोलस की फसल में 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। कंद निकालने से 2-3 सप्ताह पहले सिंचाई बंद कर दें, जिससे कंदों का विकास बेहतर होता है और उनकी गुणवत्ता बनी रहती है।

लीची

लीची के फल सामान्यत: मई-जून में पककर तैयार हो जाते हैं। फल पकने पर उनका रंग गहरा गुलाबी या लाल हो जाता है। फल फटने की समस्या प्राय: मृदा में नमी की कमी एवं गर्म हवाओं के कारण होती है। इससे बचाव हेतु फल बनने से लेकर पकने तक हल्की सिंचाई करते रहें।

फल विगलन रोग से बचाव हेतु फल पकने से लगभग 20-25 दिनों पूर्व बाविस्टिन 10 ग्राम/10 लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

लीची

केला

केले की रोपाई हेतु 1.5 मीटर दूरी पर 50×50 सें.मी. आकार के गड्ढे तैयार करें। प्रत्येक गड्ढे में लगभग 10 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट खाद, 10 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन तथा 50 ग्राम फॉस्फोरस मिलाकर भरें।

रोपित पौधों में 25 ग्राम नाइट्रोजन पौधे से लगभग 50 सें.मी. दूरी पर गोलाई में देकर मृदा में मिलाएं तथा सिंचाई करें।

कागजी नीबू

कागजी नीबू में फल फटने की समस्या के नियंत्रण हेतु पोटेशियम सल्फेट का 4 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करना लाभकारी पाया गया है।

मई के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह[1], कपिला शेखावत[1], अंजली पटेल[2], विनय उपाध्याय[3], एस.एस. राठौर और **प्रवीण कुमार उपाध्याय[1]**

"मई माह, जिसे सामान्यत: वैशाख-ज्येष्ठ का समय भी कहा जाता है, भारत के अधिकांश भागों में ग्रीष्म ऋतु का चरम काल होता है। कृषि की दृष्टि से यह महीना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस समय तक रबी फसलों जैसे गेहूं, जौ, चना, मसूर एवं मटर की कटाई, मड़ाई और गहाई का कार्य लगभग पूर्ण हो जाता है। इसके बाद इन उपजों का सुरक्षित भंडारण एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में सामने आता है। अनाज के साथ-साथ भूसा भी एक बहुमूल्य उत्पाद है, अत: उसका भंडारण भी सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। रबी फसलोत्पाद को वैज्ञानिक विधियों से सुरक्षित रखना अत्यंत आवश्यक है। मई में सिंचित क्षेत्रों में जायद की फसलें उगाई जाती हैं। समय पर बोई गई फसलें जैसे मूंग, उड़द, लोबिया, मूंगफली, सूरजमुखी, गन्ना, कपास, धान की नर्सरी, चारा फसलें, हरी खाद फसलें, औषधीय एवं मेंथा फसलें, सब्जी फसलें, बागवानी फसलें तथा पुष्प एवं सुगंधित पौधे इस समय पौध अवस्था में होते हैं। इसलिए इनका उचित प्रबंधन आवश्यक होता है। उपलब्ध भूमि, जलवायु और संसाधनों के अनुसार फसलों एवं उन्नत प्रजातियों का चयन, सही समय पर उपयुक्त विधि से बुआई, मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, फसल की क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई तथा खरपतवार, कीट एवं रोग नियंत्रण के आवश्यक उपाय अपनाना बेहद जरूरी है।"

मई माह में खाली खेतों में ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई, मृदा सौरीकरण, खरपतवार नियंत्रण तथा मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए आवश्यक उपाय भी किसान करते हैं। साथ ही, सिंचाई प्रबंधन, खेत की सफाई और फसल अवशेषों का उचित निपटान भी इस माह के प्रमुख कृषि कार्यों में शामिल हैं।

इसके अतिरिक्त, मई में किसान खरीफ फसलों जैसे धान, मक्का और सोयाबीन आदि के लिए बीज, उर्वरक एवं अन्य आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था भी करते हैं। नर्सरी की तैयारी, उन्नत किस्मों का चयन तथा समय पर बुआई की योजना बनाना इस समय अत्यंत आवश्यक होता है। उचित प्रबंधन और समय पर किए गए कार्यों से आगामी

[1]सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012; [2]सस्य विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर-492012 (छत्तीसगढ़); [3]सस्य विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पीली चितेरी रोग

यह रोग मुख्यत: सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। प्रारंभ में कोमल पत्तियों पर पीले-हरे धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में बढ़कर पूरी पत्ती एवं फलियों को प्रभावित कर देते हैं, जिससे फलियों एवं दानों का आकार छोटा रह जाता है। नियंत्रण के लिए मूंग की रोगरोधी किस्में: पूसा 1371, पूसा 1431, पूसा विशाल, पूसा 0672, पूसा 9531, सम्राट, मेहा, एच.यू.एम-16, एमएस-2-15, गंगा-8, पंत मूंग-4 एवं नरेन्द्र मूंग-1 तथा उड़द की किस्में-के.यू.-300, यू.जी.-218, आई.पी.यू.-94-1, पंत उड़द-19 एवं नरेन्द्र उड़द-1 की बुआई करें। साथ ही बुआई के समय डाइसल्फॉन या फोरेट 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से भूमि में प्रयोग करें।

खरीफ मौसम में बेहतर उत्पादन और अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। मई में किए जाने वाले प्रमुख कृषि कार्यों का विवरण इस प्रकार है:

गेहूं, जौ, चना, मसूर एवं मटर की फसल में कटाई उपरांत प्रबंधन

- फसलों की सफल कटाई, मड़ाई तथा गहाई के बाद कई बार किसानों द्वारा अनाज भंडारण के लिए उपयुक्त उपाय करने के बावजूद यदि जरा सी भी चूक हो जाए, तो फसल उत्पाद में भारी नुकसान हो सकता है और वर्षभर की मेहनत पर पानी फिर जाता है। कई बार तो यह मनुष्य एवं पशुओं के उपयोग के योग्य भी नहीं रह जाता है।
- अनाज व बीज को भंडारण से पहले ठीक प्रकार से सुखा लेना चाहिए, क्योंकि अनाज में अधिक नमी होने पर अनेक कीटों जैसे-अनाज का पतंगा (साइटोट्रोगा सिरियलेला), दाल का ढोरा (कैलोसोब्रूकस मैकूलेटस), खपरा बीटल (ट्रोगोडरमा ग्रेनैरियम), सूंड वाली सुरसुरी (साइटोफिलस ओरायजी), घुन या छोटा छिद्रक (राइजोपरथा डोमिनिका), चावल का पतंगा (कोरसायरा सिफेलोनिकी) तथा आटे का कीट (ट्राइबोलियम कैस्टेनियम) आदि का प्रकोप बढ़ जाता है।
- भंडारण के लिए धान्य फसलों में नमी की मात्रा 8-10 प्रतिशत तथा तिलहनी एवं दलहनी फसलों में 6-8 प्रतिशत उपयुक्त मानी जाती है। शोध से यह भी पाया गया है कि भंडारण के समय धान्य फसलों के बीज में 10-12 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर कीटों तथा 14-15 प्रतिशत से अधिक होने पर फफूंदजनित रोगों का प्रकोप होने लगता है। साथ ही 15 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर बीजों की अंकुरण क्षमता प्रभावित होती है।
- भंडारण हेतु सबसे पहले भंडारगृह की अच्छी प्रकार से साफ-सफाई करनी चाहिए। पुराने अवशेषों तथा मकड़ी के जालों को हटाकर दीवारों एवं फर्श पर पड़ी दरारों को सीमेंट से बंद कर देना चाहिए। कीटों से बचाव के लिए मैलाथियॉन 50 ई.सी. को 10 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर भंडारण कक्ष में अच्छी तरह छिड़काव करें तथा कमरे को कम से कम एक सप्ताह तक बंद रखें, जिससे उसमें छिपे हुए कीट नष्ट हो जाते हैं।
- यदि छिड़काव से कीटों का नियंत्रण न हो सके तथा प्रति कि.ग्रा. बीज या अनाज में दो कीट उपस्थित हों, तो धूम्रीकरण करना चाहिए। इसके लिए एल्युमिनियम फॉस्फेट की 1-3 गोली प्रति टन अनाज की दर से विभिन्न ऊंचाइयों पर रखकर ढेर को गैस-अवरोधी चादर से ढक दिया जाता है। गोलियों से फॉस्फिन गैस निकलती है, जो कीटों को नष्ट कर देती है। इसके अतिरिक्त मिथाइल ब्रोमाइड 3-5 मि.ली. प्रति 100 कि.ग्रा. अनाज तथा एथिलीन डाइब्रोमाइड (ई.डी.बी.) 30 मि.ली. प्रति टन बीज की दर से भी धूम्रीकरण किया जा सकता है। अनाज में नीम के बीज का चूर्ण मिलाकर रखने से भी कीटों का प्रकोप कम होता है।
- चना, मटर एवं मसूर के दानों पर सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, तिल अथवा नारियल का तेल 6-7 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. तथा हल्दी पाउडर 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित कर स्टील के बर्तनों में भंडारण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक विधि से निर्मित पात्र जैसे पूसा बिन, पंतनगर कुठला एवं हापुड़ बिन का प्रयोग करना चाहिए। वैज्ञानिक तरीके से अनाज व बीज का भंडारण करने पर कीटों एवं रोगों का प्रकोप कम होता है, जिससे अनाज व बीज लंबे समय तक सुरक्षित रहते हैं।
- गोदाम में बीज भंडारण के लिए फर्श से लगभग एक फीट ऊंचा लकड़ी का प्लेटफॉर्म बनाना चाहिए, जो दीवारों से भी लगभग एक फीट की दूरी पर हो। बोरों को गोदाम की दीवारों से सटाकर नहीं रखना चाहिए।
- भंडारण प्राय: जूट के बोरों में करना चाहिए। नए बोरों का प्रयोग अधिक उपयुक्त रहता है। यदि पुराने बोरों का उपयोग कर रहे हों, तो उन्हें 3-4

चूर्णिल आसिता

इस रोग में पत्तियों एवं अन्य भागों पर सफेद चूर्ण जैसे धब्बे बनते हैं, जो बाद में मटमैले रंग के हो जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियां समय से पहले गिर जाती हैं। नियंत्रण के लिए मूंग की किस्में; पूसा 9072, टार्म-1, सी.ओ.जी. जी.-4, पूसा 105 तथा उड़द की किस्में; एल.बी.जी.-402 एवं एल.बी.जी.-17 की बुआई करें तथा घुलनशील गंधक (0.3 प्रतिशत) या कैराथेन (0.1 प्रतिशत) अथवा कार्बेण्डाजिम (0.05 प्रतिशत) का 7-10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें।

चना फलीबेधक

इस कीट के लार्वा फलियों में प्रवेश कर बीजों को खाते हैं, जिससे दाने सिकुड़ जाते हैं या सूख जाते हैं। यह कीट पत्तियों, फूलों एवं तनों को भी नुकसान पहुंचाता है तथा संक्रमित फलियों में छोटे छेद दिखाई देते हैं। नियंत्रण हेतु फेरोमोन ट्रैप द्वारा नियमित निगरानी करें। जैसे ही 5-6 नर कीट/ट्रैप/24 घंटे मिलने लगें, नियंत्रण उपाय अपनाएं। एन.पी.वी. 250 एल.ई. का छिड़काव करें तथा परभक्षी पक्षियों के बैठने हेतु खेत में टी-आकार की लकड़ियां लगाएं। इसके अतिरिक्त नीम की निबौली के सतत का 5 प्रतिशत घोल भी प्रभावी पाया गया है। आवश्यकता होने पर मिथाइल डिमेटॉन 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें।

सफेद मक्खी

यह कीट पौधों की कोशिकाओं का रस चूसकर उनकी वृद्धि को प्रभावित करता है तथा पीली चितेरी (येलो मोजैक) रोग का संवाहक भी होता है। नियंत्रण के लिए ऑक्सीडिमेटान मिथाइल 0.1 प्रतिशत या डाइमिथोएट 0.03 प्रतिशत का 650-700 लीटर पानी/हैक्टर की दर से 3-4 छिड़काव करें। वैकल्पिक रूप से इमिडाक्लोप्रिड 0.5 मि.ली./लीटर पानी (लगभग 500 लीटर/हैक्टर) की दर से बुआई के 10-15 दिनों बाद छिड़काव करें।

दिनों तक तेज धूप में सुखाएं या गर्म पानी से धो लें अथवा 0.1 प्रतिशत मैलाथियॉन घोल में 15-20 मिनट तक डुबोकर अच्छी तरह सुखाने के बाद ही उपयोग करें।

ग्रीष्मकालीन मूंग, उड़द एवं लोबिया

जल प्रबंधन

अधिकांश क्षेत्रों में मार्च के अंतिम सप्ताह अथवा अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक मूंग, उड़द एवं लोबिया की बुआई हो चुकी होती है। इस समय फसल वृद्धि अवस्था में रहती है, अत: आवश्यकता अनुसार 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें।

खरपतवार प्रबंधन

बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवारों की समस्या अधिक रहती है। पहली सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ-साथ भूमि में वायु संचार बढ़ता है, जिससे मूल ग्रन्थियों में क्रियाशील जीवाणु वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण में अधिक सक्रिय होते हैं। अत: बुआई के 15-20 दिनों के भीतर कसोले से निराई-गुड़ाई अवश्य करें।

रोग प्रबंधन

झुर्रीदार पत्ती रोग

इस रोग में पत्तियों की असामान्य वृद्धि होकर उनमें सलवटें या मरोड़ दिखाई देते हैं। संक्रमित पत्तियां सामान्य से अधिक मोटी एवं खुरदरी प्रतीत होती हैं। नियंत्रण के लिए रोगरोधी किस्मों की बुआई करें तथा रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें। अधिक प्रकोप होने पर डाइमिथोएट 30 ई.सी. का छिड़काव करें।

ग्रीष्मकालीन मूंग

एंथ्रेक्नोज रोग

इस रोग में पत्तियों एवं फलियों पर भूरे, गोल एवं धंसे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। धब्बों का केंद्र गहरे रंग का तथा बाहरी सतह लाल रंग की होती है। अधिक प्रकोप होने पर प्रभावित भाग सूख जाते हैं। नियंत्रण हेतु बुआई से पूर्व बीज को थीरम या कैप्टॉन 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें तथा रोग के लक्षण दिखाई देने पर इन्डोफिल जेड-78 या थीरम 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर 1-2 छिड़काव करें।

सर्कोस्पोरा पर्ण बुदंगी रोग

इस रोग में पत्तियों पर स्लेटी से भूरे रंग के कोणीय धब्बे बनते हैं, जिनके चारों ओर लाल किनारी दिखाई देती है। अधिक प्रकोप होने पर फलियां बनने के समय पत्तियां सड़ जाती हैं। नियंत्रण के लिए बुआई से पूर्व बीज का कैप्टॉन या थीरम 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करें तथा रोग प्रकोप होने पर कार्बेण्डाजिम (0.05 प्रतिशत) या मैंकोजेब (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

उड़द का पत्ती धब्बा रोग

इस रोग में पत्तियों पर गोलाकार भूरे धब्बे बनते हैं, जिनका मध्य भाग हल्का भूरा तथा किनारा लाल-बैंगनी रंग का होता है। नियंत्रण के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें अथवा कार्बेण्डाजिम 500 ग्राम का एक छिड़काव करें। साथ ही गर्मी में गहरी जुताई करें तथा बीजोपचार अवश्य करें।

लोबिया मोजैक रोग

यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है, जिससे पत्तियों का आकार विकृत हो जाता है। नियंत्रण के लिए 0.1 प्रतिशत मेटासिस्टॉक्स या डाइमिथोएट का 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

कीट प्रबंधन

उड़द, मूंग एवं लोबिया में कीटों का प्रकोप विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होता है तथा यह फसल की अवस्था, तापमान, नमी, सूर्य के प्रकाश और वर्षा पर निर्भर करता है:

ग्रीष्मकालीन उड़द

तना मक्खी

इस कीट के प्रकोप से पौधों की ऊपरी दो पत्तियां मुरझा जाती हैं, पौधों में पीलापन आ जाता है तथा प्रभावित भाग फूलकर सड़ने लगते हैं। नियंत्रण के लिए फोरेट से बीजोपचार करने पर 2-4 सप्ताह तक फसल सुरक्षित रहती है। साथ ही बुआई के समय एल्डीकार्ब 10जी या फोरेट 10 जी का 1.6 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से प्रयोग लाभदायक होता है। आवश्यकता होने पर मोनोक्रोटोफॉस 40 ई.सी. 624 मि.ली./हैक्टर या ऑक्सीडिमेटान मिथाइल 25 ई.सी. 750 मि.ली./हैक्टर की दर से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

जैसिड

इसके प्रकोप से पत्तियों पर पीले धब्बे, मरोड़ तथा झुर्रियां दिखाई देती हैं, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है और फलियों की संख्या कम हो जाती है। नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.075 प्रतिशत, फेनिट्रोथियॉन 0.05 प्रतिशत, क्लोरफेनविनफॉस 0.03 प्रतिशत, मैलाथियॉन या डाइमिथोएट का छिड़काव करें अथवा इमिडाक्लोप्रिड 0.5 मि.ली./लीटर पानी की दर से बुआई के 10-15 दिनों बाद छिड़काव करें। समय पर बुआई करने से भी इस कीट का प्रकोप कम किया जा सकता है।

माहूं

इसके प्रकोप से पत्तियों पर पीले या हरे धब्बे, सिकुड़न तथा तनों पर चिपचिपा पदार्थ दिखाई देता है। यह कीट पौधों का रस चूसकर उन्हें कमजोर बना देता है तथा विषाणु रोगों के प्रसार में भी सहायक होता है। नियंत्रण के लिए फेनवेलरेट, साइपरमेथ्रिन एवं डेकामेथ्रिन का छिड़काव प्रभावी पाया गया है। बुआई के समय डाइसल्फोटोन ग्रेन्यूल 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से प्रयोग करने पर लगभग 5 सप्ताह तक नियंत्रण मिलता है।

पत्तीछेदक भृंग

इसके प्रकोप से पत्तियों पर सफेद रंग की सुरंगें या रेखाएं दिखाई देती हैं। प्रभावित

पत्तियां पीली या भूरी होकर सिकुड़ जाती हैं और मुरझा जाती हैं तथा कई बार उनमें छेद भी हो जाते हैं। नियंत्रण के लिए डाइसल्फोटॉन 5 जी का 1.5 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग लाभदायक होता है।

कटाई एवं मड़ाई

जब 80 प्रतिशत से अधिक फलियां पक जाएं, तब हंसिया की सहायता से कटाई कर लेनी चाहिए। अधिक देर से कटाई करने पर फलियों से दाने चटकने की आशंका रहती है। उड़द एवं मूंग की नई प्रजातियां प्राय: एक साथ पकती हैं, जिससे पूरी फसल की कटाई एक साथ की जा सकती है। कटाई के बाद फसल को 3-6 दिनों तक अच्छी तरह सुखाकर मड़ाई करें। बीजों को तब तक धूप में सुखाएं, जब तक उनमें नमी 10-12 प्रतिशत के बीच न रह जाए। लोबिया की कोमल फलियों की तुड़ाई 4-5 दिनों के अंतराल पर नियमित रूप से करें। झाड़ीदार प्रजातियों में 3-4 तुड़ाई तथा बेलदार प्रजातियों में 8-10 तुड़ाई की जा सकती है।

ग्रीष्मकालीन सूरजमुखी

जल प्रबंधन

सूरजमुखी की फसल में आवश्यकता अनुसार सिंचाई करते रहें। जायद में बोई गई सूरजमुखी की फसल में सामान्यत: तीन सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बुआई के 30-35 दिनों बाद करें तथा इसी समय नाइट्रोजन की शेष एक-तिहाई मात्रा का प्रयोग करें। दूसरी सिंचाई 40-45 दिनों बाद, फूल आने की अवस्था में तथा अंतिम सिंचाई बीज बनने की अवस्था में करें। फूल आने के समय मधुमक्खियां प्राकृतिक रूप से अत्यधिक सक्रिय रहती हैं, जो परागण में सहायक होती हैं। इससे पूरे शीर्ष में दाना भराव अच्छा होता है, जिससे उपज एवं बीजों में तेल की मात्रा दोनों में वृद्धि होती है।

सूरजमुखी

खरपतवार प्रबंधन

सूरजमुखी की फसल में प्रारंभिक अवस्था में निराई-गुड़ाई अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। विशेषकर बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली सिंचाई के पश्चात निराई-गुड़ाई अवश्य करें। खरपतवार नियंत्रण हेतु पेण्डीमेथिलीन 3 प्रतिशत ई.सी. का छिड़काव किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त बुआई के 3 तथा 6 सप्ताह बाद दो बार निराई-गुड़ाई करें तथा पौधों पर मृदा चढ़ाने का कार्य भी सुनिश्चित करें।

सूरजमुखी में रोग एवं कीट प्रबंधन

कीट प्रबंधन

जायद में बोई गई सूरजमुखी की फसल में पत्ती खाने वाले कीट (लीफ हॉपर) के नियंत्रण हेतु मोनोक्रोटोफॉस 0.05 प्रतिशत या डाइमिथोएट 0.03 प्रतिशत का छिड़काव करें। रस चूसक कीट जैसे माहूं एवं जैसिड की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड 125 ग्राम/हैक्टर या एसिटामिप्रिड 125 ग्राम/हैक्टर की दर से छिड़काव करें। चेंपा (एफिड्स) के अधिक प्रकोप की स्थिति में मैलाथियॉन 50 ई.सी. की 200 मि.ली. मात्रा को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

सूरजमुखी की फसल में रतुआ, डाउनी मिल्ड्यू, हेड रॉट तथा राइजोपस हेड रॉट जैसे रोगों का प्रकोप देखा जाता है। पत्ती झुलसा रोग के नियंत्रण हेतु मैंकोजेब 3 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। पुष्पण अवस्था पर 2 प्रतिशत बोरेक्स एवं 1 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव करने से दानों का भराव अच्छा होता है तथा तेल की मात्रा में वृद्धि होती है। रोगों की रोकथाम हेतु बुआई से पूर्व बीज का बाविस्टिन या थीरम से उपचार करना सबसे प्रभावी उपाय है।

ग्रीष्मकालीन गन्ना

बुआई

देश के कई राज्यों में मई माह तक ग्रीष्मकालीन गन्ने की बुआई की जाती है, हालांकि इसकी उपज शरदकालीन एवं बसंतकालीन गन्ने की तुलना में अपेक्षाकृत कम होती है। ग्रीष्मकालीन गन्ने की सफलता काफी हद तक पूर्ववर्ती फसल तथा उपयुक्त किस्म के चयन पर निर्भर करती है। बुआई से पूर्व गन्ने के टुकड़ों को 24 घंटे तक पानी में भिगोकर रखने से अंकुरण अच्छा होता है। इस समय बुआई के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी लगभग 60 सें.मी. रखें तथा कूड़ के अंदर टुकड़ों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रखें। बुआई के लगभग 3 माह बाद 60-75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (लगभग 130-163 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें। यदि गन्ना काटने के बाद पुन: गन्ने की बुआई करनी हो, तो पहले पलेवा करके बुआई करें।

किस्मों का चयन

ग्रीष्मकालीन बुआई के लिए सी.ओ. एच.-37 किस्म को मई के प्रथम सप्ताह

गन्ना

गन्ना में पेड़ी प्रबंधन

मुख्य फसल की कटाई के बाद सभी ठूंठों से समान रूप से पेड़ी का फुटाव नहीं होता, जिससे खेत में रिक्त स्थान बन जाते हैं। इन स्थानों की पूर्ति के लिए पहले से तैयार नर्सरी के पौधों को लगाएं या दो-आंखों वाले टुकड़ों से रिक्त स्थान भर दें। पेड़ी फसल से अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु पहली फसल की कटाई के बाद 75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (लगभग 163 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें तथा इतनी ही मात्रा दूसरी एवं तीसरी सिंचाई के समय या कटाई के लगभग 60 दिनों बाद दें। साथ ही 75 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर का प्रयोग भी लाभकारी रहता है। 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करने से पेड़ी फसल की उपज में वृद्धि होती है। पेड़ी फसल में अप्रैल-मई के दौरान काला चिकटा (ब्लैक बग) एवं गुलाबी चिकटा कीट का प्रकोप देखा जाता है, जो पत्तियों का रस चूसकर उन्हें पीला कर देते हैं। इनके नियंत्रण हेतु प्रोफेनोफॉस + साइपरमेथ्रिन (रॉकेट) 400 मि.ली. प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

तक लगाया जा सकता है। यह तेजी से बढ़ने वाली किस्म है, जिसका गन्ना मोटा, नरम एवं रसदार होता है। यह अपेक्षाकृत कमजोर मृदा में भी सिफारिश की गई नाइट्रोजन की आधी मात्रा पर लगभग 320 क्विंटल/हैक्टर उपज तथा 18-20 प्रतिशत तक खांड देती है। अधिक वृद्धि होने पर यह गिरने की आशंका रखती है, इसलिए इसे द्वि-पंक्ति विधि से बोना, समय पर मृदा चढ़ाना तथा बांधना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त सी.ओ.-1148 एवं सी.ओ.एस.-767 किस्में सूखे की स्थिति को अपेक्षाकृत बेहतर सहन कर लेती हैं।

मृदा चढ़ाना

यदि पौधे कुछ बड़े हो गए हों, तो मई माह में गन्ने की फसल पर हल्की मृदा चढ़ा दें। इससे खरपतवार नियंत्रण में सहायता मिलती है तथा फसल गिरने से भी बचती है।

जल प्रबंधन

मई माह में अधिक तापमान एवं तेज हवाओं के कारण गन्ने की फसल में पर्याप्त

गन्ना में रोग एवं कीट प्रबंधन

कीट प्रबंधन

अंकुर बेधक एवं दीमक के नियंत्रण हेतु कूंड को ढकने से पहले बी.एच.सी. 20 ई.सी. की 6 लीटर मात्रा को पानी में घोलकर बोए गए टुकड़ों पर छिड़काव करें। बुआई के समय प्रति एकड़ भूमि में 2 लीटर क्लोरोपायरोफॉस को लगभग 400 लीटर पानी में घोलकर पंक्तियों में डालना भी लाभकारी होता है। अगोला बेधक कीट की रोकथाम हेतु मोनोक्रोटोफॉस 40 ई.सी. की 1.5 लीटर मात्रा या कार्बोफ्यूरॉन 30 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग करें। अप्रैल से जुलाई के बीच रैनेक्सीपायर 20 एस.सी. की 150 मि.ली. मात्रा को 400 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें अथवा जून के अंत में कार्बोफ्यूरॉन 13 कि.ग्रा./एकड़ की दर से प्रयोग करें।

रोग प्रबंधन

गन्ने की फसल को रोगों से बचाने के लिए रोगरोधी किस्मों का चयन करें तथा स्वस्थ बीज का उपयोग करें। समन्वित रोग प्रबंधन अपनाने से रोगों की आशंका कम होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है। रोगग्रस्त गन्ने के पौधों को खेत से निकालकर 0.1 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम का छिड़काव करें।

ग्रीष्मकालीन मूंगफली

बुआई एवं किस्में

सिंचित क्षेत्रों में जायद मूंगफली की बुआई मई के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। इसके लिए मूंगफली-गेहूं फसलचक्र अपनाना लाभकारी रहता है। एक ही खेत में लगातार प्रतिवर्ष मूंगफली की खेती नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे भूमि में रोगों का प्रकोप बढ़ने की आशंका रहती है। सिंचित क्षेत्रों के लिए उन्नत किस्में; एम-522, एम-335 तथा एच.बी.-84 तथा वर्षा पर निर्भर (बारानी) क्षेत्रों के लिए एम-37 उपयुक्त पाई गई हैं।

खरपतवार प्रबंधन

मूंगफली की फसल में खरपतवारों के कारण लगभग 40-45 प्रतिशत तक उपज में कमी हो सकती है। फसल की प्रारंभिक 30-35 दिनों की अवस्था खरपतवारों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है। अत: पहली निराई-गुड़ाई बुआई के 20-25 दिनों बाद तथा दूसरी 35-40 दिनों बाद अवश्य करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई से पूर्व फ्लूक्लोरालिन (बासालिन) या ट्रेफलॉन 0.75-1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से मृदा में मिला दें। यदि बुआई से पूर्व खरपतवारनाशी का प्रयोग न किया गया हो, तो बुआई के 1-3 दिनों के भीतर लासो 1.5-2.0 कि.ग्रा./हैक्टर या पेण्डीमेथिलीन 1.0-1.25 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से छिड़काव करें। खड़ी फसल में चौड़ी पत्ती एवं घास वर्गीय खरपतवारों के नियंत्रण हेतु इमेजेथापायर (10 प्रतिशत एस.एल.) 75-100 ग्राम सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से बुआई के 20-25 दिनों बाद छिड़काव करें।

जल प्रबंधन

स्वस्थ उपज प्राप्त करने के लिए ग्रीष्मकालीन मूंगफली में सामान्यत: 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। फसल में 30-35 दिनों बाद फूल आने प्रारंभ हो जाते हैं, अत: इस अवस्था में दूसरी सिंचाई करें। 45-50 दिनों बाद खूंटी बनने लगती हैं, इसलिए 50-55 दिनों पर तीसरी सिंचाई अवश्य करें। इस समय गहरी सिंचाई करना लाभकारी होता है। खूंटी भूमि में प्रवेश करने लगती हैं और फलियों का निर्माण प्रारंभ होता है। चौथी सिंचाई 70-75 दिनों बाद फलियों में दाना भरने की अवस्था में करें।

पौध संरक्षण

ग्रीष्मकालीन मूंगफली में दीमक एवं फली बेधक के प्रकोप की स्थिति में क्लोरोपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. की 2.5 लीटर मात्रा प्रति हैक्टर की दर से सिंचाई के साथ प्रयोग करें। सूत्रकृमि के नियंत्रण हेतु कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 20 कि.ग्रा. अथवा फोरेट 10 जी 10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना लाभकारी पाया गया है।

नमी बनाए रखना आवश्यक होता है। गन्ने की पूरी फसल अवधि में लगभग 60-70 इंच पानी की आवश्यकता होती है, जिसमें से लगभग आधा पानी वर्षा से प्राप्त हो जाता है। खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। बुआई के लगभग 6 सप्ताह बाद पहली सिंचाई दें। शरदकालीन, बसंतकालीन एवं पेड़ी फसल में मई माह के दौरान लगभग 10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना लाभकारी रहता है।

पानी की कमी की स्थिति में पंक्तियों के बीच गन्ने की सूखी पत्तियों की 7-8 सें.मी. मोटी परत बिछा दें। इससे मृदा में नमी लंबे समय तक बनी रहती है, खरपतवार कम उगते हैं तथा पत्तियां सड़कर जैविक खाद के रूप में भी उपयोगी हो जाती हैं।

कपास

कपास एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है, जिसे व्यावसायिक जगत में 'श्वेत स्वर्ण' के नाम से जाना जाता है।

जलवायु

कपास की अच्छी जमाव के लिए न्यूनतम 16 डिग्री सेल्सियस तापमान आवश्यक होता है। फसल की वृद्धि के समय 21-27 डिग्री सेल्सियस तापमान एवं रात्रि में हल्की ठंडक अनुकूल रहती है। गूलरों के फटने हेतु चमकीली धूप तथा पालारहित मौसम आवश्यक होता है। कपास की रूल खेती के लिए कम से कम 50 सें.मी. वर्षा की आवश्यकता होती है।

कपास

मृदा

कपास की खेती के लिए अच्छी जलधारण क्षमता एवं उचित जलनिकास वाली मृदा उपयुक्त रहती है। जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, वहां बलुई तथा बलुई दोमट मृदा में इसकी सफल खेती की जा सकती है। इसके लिए उपयुक्त

चारा फसलें

फसल प्रबंधन

बरसीम, जई एवं लोबिया की बीज वाली फसल की कटाई समय पर करें तथा 10-12 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। मई माह में हरे चारे के लिए बाजरा, ज्वार एवं मक्का की बुआई की जा सकती है। इन फसलों की बुआई सामान्यत: मार्च के अंत से अप्रैल तक की जाती है, अत: सिंचाई का विशेष ध्यान रखें। प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें तथा नाइट्रोजन की उचित मात्रा का प्रयोग करें, जिससे चारे की वृद्धि अच्छी होती है।

चारा हेतु मक्का

किस्मों का चयन

मई में सिंचित अवस्था में चारे के लिए बाजरा (पीसीबी-141), मकचरी (टी. एल.-1), नेपियर-बाजरा संकर (पी.वी.एन.-233, पी.वी.एन.-83 एवं संकर-21), ज्वार (जे.एम.-20, एच.सी.-136, एच.सी. -171, एच.सी.-260, एच.सी.-308, एस.एल.-44 एवं पंजाब सूडेक्स चरी-1), मक्का (जे. -1006, प्रभात, प्रताप, केसरी एवं मेघा), गिनी घास (पी.जी.जी.-518 एवं पी.जी.जी.-101), ग्वार (एफ.एस.-277 एवं ग्वार-80) तथा लोबिया (लोबिया-88 एवं लोबिया-90) की बुआई उपयुक्त रहती है। चारे की फसलों को मिश्रित रूप में बोने से चारा अधिक पौष्टिक प्राप्त होता है तथा उपज एवं कटाइयों की संख्या भी बढ़ती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

मिश्रित चारे की बुआई से पहले बीज को रोगों से बचाव हेतु उपचारित कर लें। इसके बाद खेत की 2-3 बार जुताई करके लगभग 10 टन गोबर की सड़ी खाद तथा एक बोरा यूरिया प्रति हैक्टर की दर से डालकर बीज छिड़काव विधि से बुआई करें। ज्वार की एक कटाई वाली प्रजातियों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा पहली सिंचाई के बाद दें। बहुकटाई वाली चरी में 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (लगभग 65 कि.ग्रा. यूरिया) तथा मक्का में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (लगभग 87 कि.ग्रा. यूरिया) बुआई के लगभग 30 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग करें। प्रत्येक कटाई के बाद शेष नाइट्रोजन समान मात्रा में देने से हरे चारे की वृद्धि अच्छी होती है।

कटाई

फसल की अच्छी वृद्धि होने पर आवश्यकतानुसार समय-समय पर कटाई करते रहें। प्रत्येक कटाई के बाद लगभग आधा बोरा यूरिया का प्रयोग करने से अगली बढ़वार तेज होती है और चारे की गुणवत्ता में सुधार होता है।

कपास की प्रजातियां

विभिन्न क्षेत्रों के लिए **अमेरिकन कपास** की उन्नत प्रजातियां: एफ-286, एल.एस. -886, एफ-414, एफ-846, एफ-1861, एल.एच.-1556, पूसा 8-6, एफ-1378, एच.1117, एच.एस.-45, एच.एस.-6, एच.-1098,सी.एन.एच.-36, रजत, गुजरात कॉटन-12, 14 एवं 16 आदि उपयुक्त पाई गई हैं। **संकर कपास** की प्रमुख प्रजातियां: फतेह, एल.डी.एच.-11, एल.एच.-144, धनलक्ष्मी, एच.एच.एच.-223, सी.एस.ए.ए.-2, उमाशंकर, जे.के.एच.वाई.-1 आदि हैं। **बी.टी. कपास** की प्रजातियां: आर.सी.एच.-308, आर.सी.एच.-314, आर.सी.एच.-134, आर.सी.एच.-317, एम.आर.सी.-6301 एवं एम.आर.सी.-6304 तथा **देसी कपास** (गोसीपियम आर्बोरियम) की प्रजातियां एच.-777, एच.डी.-1, एच.-974, एच.डी.-107, डी.एस.-5, एल.डी.-694, एल.डी.-327, एल.डी. -230, एल.डी.-491, पी.ए.यू.-626, मोती, आर.जी.-8, रोहिणी, गुजरात कॉटन-15 एवं 11 आदि देश के विभिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं।

मृदा पी-एच मान 5.5-6.0 है, हालांकि इसकी खेती 8.5 पी-एच तक की मृदा में भी की जा सकती है।

फसल पद्धति

सिंचित क्षेत्रों में कपास-सूरजमुखी, कपास-मूंगफली, कपास-बरसीम/जई तथा कपास-गेहूं/जौ प्रमुख फसलचक्र हैं। उत्तर भारत में कपास-मटर, कपास-ज्वार तथा कपास-गेहूं तथा दक्षिण भारत में कपास-ज्वार, कपास-मूंगफली, धान-कपास एवं कपास-धान प्रमुख फसलचक्र अपनाए जाते हैं। उत्तर भारत में कपास के बाद गेहूं लेने के लिए शीघ्र पकने वाली कपास की प्रजातियां तथा देर से बोई जाने वाली गेहूं की प्रजातियां उपयुक्त रहती हैं।

बुआई

अमेरिकन कपास की बुआई देसी कपास से कुछ पहले की जाती है। पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में इसकी बुआई सामान्यत: गेहूं की कटाई के बाद अप्रैल-मई में की जाती है। पंक्तियों में बुआई करना अधिक लाभकारी रहता है, जिसके लिए सीड ड्रिल या देसी हल के पीछे कूड़ में बीज बोया जाता है।

अमेरिकन, संकर तथा देसी कपास के लिए क्रमश: 15-20, 2-2.5 तथा 15-16 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। अमेरिकन एवं देसी कपास के लिए 60×30 सें.मी. तथा संकर प्रजातियों के लिए 90×60 सें.मी. दूरी उपयुक्त रहती है।

बीज उपचार

बीज को कार्बेण्डाजिम 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें, जिससे राइजोक्टोनिया जड़ गलन, फ्यूजेरियम उकठा एवं अन्य मृदाजनित रोगों से सुरक्षा मिलती है। इसके अतिरिक्त इमिडाक्लोप्रिड 7 ग्राम या कार्बोसल्फॉन 20 ग्राम/कि.ग्रा. बीज उपचार करने से 40-60 दिनों तक रस चूसक कीटों से सुरक्षा मिलती है। दीमक से बचाव के लिए क्लोरोपायरीफॉस 10 मि.ली. को 10 मि.ली. पानी में मिलाकर बीज पर छिड़काव कर छाया में सुखाकर बुआई करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें। देसी प्रजातियों के लिए 50-70 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर, अमेरिकन प्रजातियों के लिए 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 20-30 कि.ग्रा. पोटाश तथा संकर प्रजातियों के लिए 150-60-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश प्रति हैक्टर आवश्यक होते हैं। इसके अतिरिक्त 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर का प्रयोग लाभकारी रहता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा अन्य उर्वरकों की पूरी मात्रा बुआई के समय दें तथा शेष नाइट्रोजन पुष्पण अवस्था में सिंचाई के बाद दें।

जल प्रबंधन

कपास की फसल में सामान्यत: 3-4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। सिंचाई मृदा की नमी के अनुसार करें तथा अंतिम सिंचाई एक-तिहाई टिंडे खुलने की अवस्था पर करें।

खरपतवार प्रबंधन

कपास की अच्छी उपज के लिए प्रभावी खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। फसल वृद्धि के समय 3-4 बार गुड़ाई बैलचालित त्रिफाली या ट्रैक्टरचालित कल्टीवेटर से करें। पहली गुड़ाई बुआई के 30-35 दिनों बाद, पहली सिंचाई से पूर्व करें। फूल एवं गूलर बनने की अवस्था में कल्टीवेटर के स्थान पर खुरपी से निराई करें। खरपतवार नियंत्रण हेतु पेण्डीमेथिलीन 3.3 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से जमाव से पूर्व या बुआई के 2-3 दिनों के भीतर प्रयोग करें।

धान की नर्सरी

भूमि का चयन

स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौध तैयार करने के लिए उचित जल-निकास वाली तथा उच्च पोषक तत्वों से युक्त दोमट मृदा का चयन करें। नर्सरी का स्थान सिंचाई स्रोत के निकट होना चाहिए। सामान्यत: बुआई से लगभग एक माह पूर्व नर्सरी की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए। नर्सरी क्षेत्र में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करके खरपतवारों को उगने दें तथा बाद में हल चलाकर या अवरणात्मक (नॉन-सेलेक्टिव) खरपतवारनाशी जैसे पैराक्वाट या ग्लाइफोसेट 1 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से छिड़काव कर उन्हें नष्ट कर दें। इससे मुख्य खेत में भी खरपतवारों की समस्या कम होती है। मई-जून में 3-4 बार गहरी जुताई कर खेत को खाली छोड़ने से मृदाजनित रोगों की आशंका कम हो जाती है।

धान की नर्सरी

बीज चयन

बीज का चयन सावधानीपूर्वक करें तथा सदैव आधारभूत या प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें। ऐसे बीजों में अच्छी अंकुरण क्षमता, किस्म की शुद्धता एवं रोगमुक्तता सुनिश्चित रहती है।

क्यारी प्रबंधन

धान की पौध तैयार करने के लिए सामान्यत: 8 मीटर लंबी एवं 1.5 मीटर चौड़ी क्यारियां बनाएं। अंकुरण के प्रारंभिक 2-3 दिनों तक अंकुरित बीजों को पुआल से ढककर रखें तथा नवपौध हरी होने तक पक्षियों से बचाव हेतु विशेष सावधानी बरतें।

बीजदर एवं बीजोपचार

धान की नर्सरी के लिए मध्यम अवधि की किस्मों हेतु लगभग 40 कि.ग्रा., मोटे धान के लिए 45 कि.ग्रा. तथा बासमती प्रजातियों के लिए लगभग 20-25 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। बुआई से पूर्व बीज को 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा या 2.5 ग्राम कार्बेण्डाजिम अथवा थीरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। जहां जीवाणु झुलसा या जीवाणुजनित रोग की समस्या हो, वहां 25 कि.ग्रा. बीज के लिए 4 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या 40 ग्राम प्लांटोमाइसिन को पानी में मिलाकर बीज को रात भर भिगो दें तथा 24-36 घंटे तक जमाव होने दें। बीच-बीच में पानी का हल्का छिड़काव करते रहें तथा अगले दिनों छाया में सुखाकर नर्सरी में बुआई करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

अच्छी एवं स्वस्थ पौध तैयार करने के लिए संतुलित पोषक तत्वों का प्रयोग आवश्यक है। 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र के लिए लगभग 10 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद, 10 कि.ग्रा. डाइअमोनियम फॉस्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट जुताई से पहले मृदा में अच्छी तरह मिला दें। यदि 10-12 दिनों बाद पौध का रंग हल्का पीला दिखाई दे, तो एक सप्ताह के अंतराल पर दो बार 10 कि.ग्रा. यूरिया प्रति 1000 वर्ग मीटर की दर से छिड़काव या ऊपर से मिला दें, जिससे पौध की वृद्धि अच्छी होती है।

खरपतवार प्रबंधन

बुआई के 1-2 दिनों बाद पायराजोसल्फ्यूरॉन 250 ग्राम/हैक्टर की दर से पौध निकलने से पूर्व छिड़काव करें। इसके लिए खरपतवारनाशी को 10-15 कि.ग्रा. रेत प्रति 1000 वर्ग मीटर

में मिलाकर नर्सरी क्यारियों पर समान रूप से फैलाएं तथा क्यारियों में 1-2 सें.मी. पानी बनाए रखें, जिससे खरपतवारनाशी का समान वितरण हो सके।

हरी खाद फसलें

दलहनी एवं गैर-दलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि काल में उपयुक्त समय पर जुताई करके मृदा में दबा देना हरी खाद देना कहलाता है। इससे मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का विशेष महत्व है। इनकी जड़ों में उपस्थित सहजीवी जीवाणु ग्रंथियां वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करके पौधों को उपलब्ध करवाती हैं। फसल के उपयोग के बाद शेष नाइट्रोजन मृदा में रह जाती है, जिसका लाभ अगली फसल को मिलता है।

उपयुक्त फसलें

हरी खाद के लिए ढैंचा एवं सनई की बुआई भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिए अत्यंत उपयोगी होती है। इन फसलों से लगभग 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त मूंग, उड़द, अरहर, चना, मसूर, मटर, लोबिया, मोठ, खेसारी तथा कुल्थी जैसी दलहनी फसलें भी हरी खाद के रूप में उपयोगी हैं। हरी खाद की फसलों का चयन स्थानीय भूमि, जलवायु एवं उद्देश्य को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

हरी खाद ढैंचा

हरी खाद वाली फसलों के वांछनीय गुण

हरी खाद के लिए ऐसी फसलें उपयुक्त होती हैं, जिनके तने, शाखाएं एवं पत्तियां कोमल और अधिक मात्रा में हों, ताकि उनका शीघ्र अपघटन होकर मृदा में अधिक जीवांश एवं नाइट्रोजन की वृद्धि हो सके। ऐसी फसलें शीघ्र बढ़ने वाली, सूखा-सहनशील तथा जलभराव सहन करने वाली होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त मूसला जड़ प्रणाली वाली फसलें अधिक उपयुक्त रहती हैं, क्योंकि वे गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण करती हैं तथा क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं में अंत:जल निकास सुधारने में सहायक होती हैं। साथ ही इन फसलों में रोग एवं कीटों का प्रकोप कम हो तथा बीज उत्पादन क्षमता अधिक होनी चाहिए।

बुआई एवं प्रबंधन

ढैंचा या सनई की बुआई के लिए लगभग 60 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बुआई से पूर्व बीज को लगभग 12 घंटे पानी में भिगोने से अंकुरण अच्छा एवं शीघ्र होता है। हरी खाद की फसलें सामान्यत: बुआई के 35-40 दिनों के भीतर पलटने योग्य हो जाती हैं। अत: खरीफ में धान की रोपाई के समय को ध्यान में रखते हुए ढैंचा, सनई एवं लोबिया की समय पर बुआई करें।

मृदा परीक्षण

मृदा परीक्षण कराने का यह उपयुक्त समय है। मृदा परीक्षण मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, पी-एच मान तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्थिति जानने के लिए मृदा नमूनों का वैज्ञानिक विश्लेषण है। मृदा परीक्षण के माध्यम से किसान अपनी भूमि की वर्तमान उर्वरता स्थिति को समझकर आवश्यक सुधारात्मक उपाय कर सकते हैं तथा संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। इसके आधार पर उपयुक्त फसल एवं फसलचक्र का चयन भी किया जा सकता है।

मृदा नमूना लेने की विधि

एक हैक्टर क्षेत्र से लगभग 10-15 स्थानों से 15 सें.मी. गहराई तक खुरपी या फावड़े की सहायता से मृदा नमूने एकत्र करें। नमूने खेत के किनारे, खाद के ढेर, सिंचाई की नाली या छायादार स्थानों के पास से न लें:

- एकत्रित सभी नमूनों को आपस में अच्छी तरह मिलाकर उसमें से लगभग 500 ग्राम प्रतिनिधि नमूना साफ कपड़े की थैली में भरकर आवश्यक विवरण सहित मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में भेजें।
- परीक्षण के पश्चात मृदा स्वास्थ्य कार्ड अवश्य प्राप्त करें, ताकि आगामी खरीफ फसलों में मृदा की स्थिति के अनुसार उर्वरकों का संतुलित प्रयोग किया जा सके।

मचान विधि से लौकी उत्पादन

कद्दूवर्गीय सब्जी फसलें

फसल प्रबंधन

कद्दूवर्गीय फसलें जैसे (लौकी, कद्दू, तोरई, काशीफल, ककड़ी, तरबूज एवं खरबूजा की बुआई सामान्यत: मार्च-अप्रैल में की जा चुकी होती है। इस समय खेतों में हरी फसलों की उपलब्धता कम होने के कारण कीटों के वैकल्पिक मेजबान पौधे कम रहते हैं, जिससे इन फसलों पर कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है। अत: इस अवस्था में फसल की नियमित निगरानी करते हुए कीट एवं रोग नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

सिंचाई प्रबंधन

ग्रीष्मकाल में विशेषकर मई माह के दौरान कद्दूवर्गीय फसलों में 5-8 दिनों के अंतराल पर आवश्यकता अनुसार सिंचाई करते रहना चाहिए, जिससे पौधों की वृद्धि एवं फल विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

कीट प्रबंधन

कद्दूवर्गीय फसलों में फल मक्खी एवं लाल कद्दू भृंग प्रमुख कीट हैं। इनके नियंत्रण के लिए कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। ध्यान रखें कि कीटनाशी का छिड़काव फल तुड़ाई के बाद ही करें।

सारणी: प्रमुख हरी खाद फसलों से प्राप्त नाइट्रोजन एवं हरे पदार्थ की मात्रा

फसल	प्राप्त नाइट्रोजन (कि.ग्रा./हैक्टर)	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	हरे पदार्थ की मात्रा (टन/हैक्टर)
ढैंचा	84-105	0.42	20-25
लोबिया	74-88	0.49	15-18
मूंग	38-48	0.48	8-10
उड़द	41-49	0.41	10-12
सनई	86-129	0.43	20-30
ग्वार	68-85	0.34	20-25
कुल्थी	26-33	0.33	8-10

रोग प्रबंधन

कद्दूवर्गीय फसलों में मृदु रोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू), चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) तथा जड़ विगलन जैसे प्रमुख रोग फफूंदजनित होते हैं। इनके नियंत्रण हेतु रोगग्रस्त फसल अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें। मृदुल रोमिल आसिता के नियंत्रण के लिए मैंकोजेब 2.5 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। चूर्णिल आसिता (बुकनी रोग) के नियंत्रण हेतु कैराथेन 1 लीटर या घुलनशील गंधक 3 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से लगभग 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना लाभकारी होता है।

भिंडी

सिंचाई प्रबंधन

भिंडी की बुआई सामान्यत: फरवरी-मार्च में की जाती है। इस समय फसल पुष्पण एवं फली विकास की अवस्था में रहती है। अत: आवश्यकता अनुसार 10-12 दिनों के अंतराल पर नियमित सिंचाई करते रहना चाहिए, जिससे फलियों का विकास अच्छा होता है।

रोग प्रबंधन

भिंडी की फसल में पीली चितेरी (मोजैक) एवं पर्ण कुंचन (लीफ कर्ल) रोग का प्रकोप प्राय: श्वेत मक्खी द्वारा फैलता है। मोजैक रोग में पत्तियों पर छोटे-छोटे पीले चितकबरे धब्बे दिखाई देते हैं तथा पत्तियों की शिराएं पीली पड़ जाती हैं। लीफ कर्ल रोग में पत्तियां सिकुड़कर विकृत हो जाती हैं। इनके नियंत्रण हेतु एसिटामिप्रिड 3 ग्राम/10 लीटर पानी या कन्फीडोर 200 एस.एल. 0.3-0.5 मि.ली./लीटर पानी की दर से बुआई के लगभग 20 दिनों बाद छिड़काव करें तथा आवश्यकता अनुसार 15 दिनों के अंतराल पर पुन: छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त स्पाइरोमेसिफेन 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव भी प्रभावी पाया गया है।

कीट प्रबंधन

भिंडी में फली एवं तनाछेदक कीट फलियों में छेद कर अंदर के बीज को नुकसान पहुंचाता है, जिससे फलियां खाने योग्य नहीं रहती। यह कीट पौधों की कोमल शाखाओं में भी छेद कर देता है, जिससे ऊपरी भाग मुरझा जाता है। इसके नियंत्रण हेतु एमामेक्टिन बेन्जोएट 2 ग्राम/10 लीटर पानी या स्पिनोसैड 1 मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। इसके साथ ही अंडा-परजीवी ट्राइकोग्रामा के लगभग 50,000 कार्ड प्रति हैक्टर की दर से खेत में छोड़ने से इस कीट का प्रकोप कम किया जा सकता है।

लाल भिंडी

पत्तियां काटने वाले कीट के नियंत्रण हेतु साइपरमेथ्रिन 0.5 मि.ली./लीटर पानी की दर से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना लाभकारी रहता है।

अदरक

बुआई

अदरक की बुआई के लिए लगभग 16-18 क्विंटल प्रकंद प्रति हैक्टर पर्याप्त होते हैं। बुआई 30×20 सें.मी. की दूरी तथा लगभग 4 सें.मी. गहराई पर करें। बुआई से पूर्व 20-25 ग्राम वजन के प्रकंद टुकड़ों को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत घोल से उपचारित करना लाभकारी रहता है।

अदरक

किस्मों का चयन एवं पोषक तत्व प्रबंधन

अदरक की उन्नत किस्में

सुप्रभा, सुरभि, सुरूचि एवं हिमगिरी खेती के लिए उपयुक्त हैं। खेत की तैयारी

मृदा की गहरी जुताई

गर्मी के मौसम में मृदा पलटने वाले हल से गहरी जुताई करने पर मृदा की ऊपरी एवं निचली परतें आपस में बदल जाती हैं। इस प्रक्रिया से बनने वाले ढेले धीरे-धीरे हवा एवं वर्षा के पानी के प्रभाव से टूट जाते हैं। साथ ही जुताई के दौरान फसल अवशेष, पौधों की जड़ें तथा खेत में उगे खरपतवार मृदा के भीतर दब जाते हैं, जो सड़कर कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाते हैं। इससे मृदा की उर्वरता, भौतिक दशा एवं संरचना में सुधार होता है। ग्रीष्मकालीन जुताई के प्रमुख लाभ निम्न हैं:

- मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है।
- मृदा के पलटने से वायु एवं सूर्य के प्रकाश का प्रभाव बढ़ता है, जिससे मृदा में उपलब्ध खनिज तत्व पौधों के लिए अधिक सुलभ हो जाते हैं।
- ग्रीष्मकालीन जुताई रोग एवं कीट नियंत्रण में सहायक होती है। अनेक हानिकारक कीट एवं रोगजनक सतह पर आकर तेज धूप के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।
- इससे मृदा में सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ती है, जो विशेष रूप से दलहनी फसलों के लिए लाभकारी होती है।
- खरपतवार नियंत्रण में भी ग्रीष्मकालीन जुताई प्रभावी सिद्ध होती है, क्योंकि खरपतवारों के बीज तेज गर्मी एवं धूप से नष्ट हो जाते हैं।
- बारानी परिस्थितियों में वर्षा जल के अधिकतम संचयन हेतु ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई अत्यंत आवश्यक होती है। शोधों से यह सिद्ध हुआ है कि ग्रीष्मकालीन जुताई से लगभग 31.3 प्रतिशत तक वर्षा जल का संचयन संभव होता है।
- ग्रीष्मकालीन जुताई से मृदा कटाव में लगभग 66.5 प्रतिशत तक कमी आती है।
- गोबर की खाद एवं अन्य कार्बनिक पदार्थों का मृदा में समुचित मिश्रण हो जाता है, जिससे पोषक तत्व शीघ्रता से फसलों को उपलब्ध होते हैं।

हल्दी

बुआई

हल्दी की बुआई के लिए लगभग 15-20 क्विंटल प्रकंद प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। बुआई 40×20 सें.मी. की दूरी तथा लगभग 4 सें.मी. गहराई पर करें। बुआई से पूर्व 20-25 ग्राम वजन के प्रकंद टुकड़ों को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत घोल से उपचारित करके ही बुआई करें, जिससे रोगों का प्रकोप कम होता है और अंकुरण बेहतर होता है।

किस्मों का चयन

हल्दी की उन्नत किस्में: कृष्णा, राजेन्द्र, कस्तूरी, पास्पु, सोनिया, सुगना, अमलापुरम एवं मधुकर खेती के लिए उपयुक्त पाई गई हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

हल्दी की अच्छी वृद्धि के लिए खेत की तैयारी के समय लगभग 75 क्विंटल नाडेप खाद या 200-250 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से डालें। इसके साथ 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 80 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से अंतिम जुताई के समय मृदा में मिला दें।

के समय लगभग 75 क्विंटल नाडेप खाद या 200-250 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से डालें। इसके साथ 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 100 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से अंतिम जुताई के समय मृदा में मिला दें।

मल्चिंग एवं अन्य प्रबंधन

अदरक, हल्दी एवं सूरन की बुआई के बाद खेत को सूखी पुआल, घास-फूस या सूखी पत्तियों से ढक दें। इससे मृदा में नमी बनी रहती है तथा अंकुरण अच्छा होता है। इस माह सूरन की बुआई का कार्य भी पूर्ण कर लेना चाहिए।

टमाटर, बैंगन एवं मिर्च

जलवायु एवं मृदा

टमाटर, बैंगन एवं मिर्च की अच्छी वृद्धि

टमाटर

एवं उपज के लिए 21-30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। इनकी खेती के लिए अच्छी जलनिकास वाली बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। मृदा का पी-एच मान लगभग 6-7 के बीच होना चाहिए।

बुआई एवं नर्सरी प्रबंधन

बैंगन की नर्सरी हेतु बीज की बुआई मई-जून में की जाती है तथा पौधों की रोपाई जून से मध्य जुलाई तक की जाती है। बुआई के बाद नर्सरी क्यारी को पुआल या घास से ढकने से अंकुरण अच्छा होता है। बीज बुआई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई अवश्य करें। मई माह के दूसरे सप्ताह में मिर्च की नर्सरी भी तैयार की जा सकती है। लगभग 400 ग्राम बीज एक एकड़ क्षेत्र में रोपाई हेतु पर्याप्त होता है। रोगों से बचाव के लिए बीज को कैप्टॉन या थीरम 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

किस्मों का चयन एवं बीजदर

बैंगन की **गोल आकार** वाली उन्नत किस्में: पूसा संकर-6, पूसा संकर-9, पूसा उत्तम एवं पूसा उपकार तथा **लंबी किस्में** पूसा संकर-5, पूसा संकर-20, पूसा श्यामला, पूसा कौशल एवं पूसा क्रांति तथा **छोटे गोल आकार** वाली किस्में पूसा अंकुर एवं पूसा बिंदु प्रमुख हैं। **सामान्य किस्मों** के लिए लगभग 400 ग्राम तथा संकर किस्मों के लिए 250-300 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

बैंगन

मृदा सौरीकरण एवं समतलीकरण

ग्रीष्मकालीन जुताई करने से खरीफ फसलों की बुआई के लिए खेत की तैयारी सरल एवं शीघ्र हो जाती है। यदि गहरी जुताई संभव न हो, तो मृदा सौरीकरण भी किया जा सकता है। इसके लिए भूमि की सतह पर पारदर्शी पॉलीथीन शीट बिछा दें। इससे मृदा की ऊपरी परत का तापमान बढ़ जाता है, जिससे रोगजनक जीवाणु, कीटों के अंडे तथा खरपतवारों के बीज नष्ट हो जाते हैं। यदि खेत समतल न हो, तो इस माह लेवलर की सहायता से खेत का समतलीकरण कर लें। इससे सिंचाई के समय पानी का समान वितरण होता है तथा जल की बचत के साथ फसल की वृद्धि भी बेहतर होती है।

मिर्च की उन्नत किस्में

पूसा सदाबहार एवं पूसा ज्वाला अच्छी उपज देने वाली प्रमुख किस्में हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

खेत की तैयारी के समय लगभग 25 टन सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट खाद प्रति हैक्टर की दर से मृदा में मिला दें। इसके साथ लगभग 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा अंतिम जुताई के समय तथा शेष आधी मात्रा फूल आने की अवस्था में टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें।

मार्च में रोपी गई टमाटर, बैंगन एवं मिर्च की फसल में आवश्यकता अनुसार सिंचाई करते रहें तथा टमाटर एवं मिर्च में रोपाई के लगभग 45-50 दिनों बाद 35 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से दूसरी टॉप ड्रेसिंग करें।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार नियंत्रण हेतु पेण्डीमेथिलीन (स्टॉम्प) 3 लीटर/हैक्टर की दर से पौध रोपाई से पहले प्रयोग करें। छिड़काव से पूर्व खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त समय-समय पर निराई-गुड़ाई भी करें। रोपाई से पहले पौधों की जड़ों को कॉन्फिडोर के घोल से उपचारित करना लाभकारी रहता है।

कीट प्रबंधन

यदि खेत में तंबाकू की सुंडी का प्रकोप दिखाई दे, तो फेरोमोन ट्रैप लगाकर कीटों की निगरानी एवं नियंत्रण करें। श्वेत मक्खी रस चूसक कीट होने के साथ-साथ विषाणु रोगों का प्रसार भी करती है। इसके नियंत्रण हेतु कॉन्फिडोर 0.3 मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

टमाटर एवं बैंगन में फलछेदक सुंडी के नियंत्रण हेतु फल तुड़ाई के बाद डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. 1 मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। बैंगन में तना एवं फलबेधक एक गंभीर कीट है। इसके नियंत्रण हेतु 100 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर की दर से 10 मीटर की दूरी पर लगाएं तथा संक्रमित प्ररोह एवं फल निकालकर नष्ट कर दें। पेड़ी फसल न लें, क्योंकि इसमें फल छेदक का प्रकोप अधिक होता है।

नीम बीज अर्क (5 प्रतिशत), बी.टी. 1 ग्राम/लीटर, स्पिनोसैड 45 एस.सी. 1 मि.ली./4 लीटर या कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से फूल आने से पहले छिड़काव करना लाभकारी होता है।

अन्य पौध संरक्षण उपाय

अधिक वृद्धि करने वाली किस्मों में पौधों को सहारा (स्टैकिंग) अवश्य दें। टमाटर के फलों को फटने से बचाने हेतु नियमित सिंचाई करें तथा 0.3-0.4 प्रतिशत बोरोन का छिड़काव लाभकारी रहता है।

इसके अतिरिक्त टमाटर के फलों को सफेदपन से बचाने के लिए पंक्तियों के बीच सनई या ढैंचा की बुआई करना तथा अधिक पत्तियों वाली किस्मों का चयन करना उपयोगी रहता है।

फूलगोभी

किस्मों का चयन

फूलगोभी की अगेती फसल के लिए पूसा कार्तिक संकर, पूसा दीपाली, पूसा कार्तिकी, पूसा अश्विनी एवं पूसा मेघना प्रमुख उन्नत किस्में हैं।

बीजदर एवं बुआई

सामान्य किस्मों के लिए 500-600 ग्राम तथा संकर किस्मों के लिए 350-400 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। अगेती फूलगोभी की नर्सरी हेतु बीज की बुआई मध्य मई से जून तक की जाती है तथा लगभग

फूलगोभी

5-6 सप्ताह की पौध रोपाई के लिए उपयुक्त रहती है।

बीजोपचार हेतु बाविस्टिन या कैप्टॉन 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से अथवा ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करें। नर्सरी क्यारी छायादार एवं पर्याप्त नमी वाले स्थान पर तैयार करें। सामान्यत: 3.0×0.45×0.15 मीटर आकार की नर्सरी क्यारी उपयुक्त रहती हैं तथा 100 वर्ग मीटर नर्सरी क्षेत्र एक हैक्टर रोपाई के लिए पर्याप्त होता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

खेत की तैयारी के समय 25-30 टन सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से मृदा में मिला दें। इसके अतिरिक्त 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 100 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से दें। अंतिम जुताई के समय नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा मृदा में मिला दें।

शेष नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में बांटकर पहला भाग रोपाई के लगभग एक माह बाद निराई-गुड़ाई के समय तथा दूसरा भाग फूल बनने की अवस्था में पौधों को मृदा चढ़ाते समय दें।

खरपतवार नियंत्रण एवं जल प्रबंधन

खरपतवार नियंत्रण हेतु रोपाई से पहले बेसालिन 2.5 लीटर या स्टॉम्प 3.3 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें तथा हल्की सिंचाई करें। अगेती फसल में रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई करें तथा उसके बाद साप्ताहिक अंतराल पर सिंचाई करते रहें। मध्यम एवं पछेती फसल में 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना उपयुक्त रहता है।

रोग प्रबंधन

फूलगोभी की नर्सरी अवस्था में आर्द्रगलन रोग (डैम्पिंग ऑफ) का प्रकोप सामान्यत: देखा जाता है, जिसमें पौधों का तना भूमि सतह के पास से गलने लगता है और पौधे नष्ट हो जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें या 25 ग्राम ट्राइकोडर्मा को 10 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर 100 वर्ग मीटर नर्सरी क्षेत्र में समान रूप से मिला दें। इसके अतिरिक्त बाविस्टिन या कैप्टॉन 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार अथवा 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव भी प्रभावी रहता है।

बीजोत्पादन हेतु विशेष कार्य

बीजोत्पादन के लिए फूलगोभी, गांठगोभी, पत्तागोभी, गाजर, मूली, पालक, मेथी एवं शलजम की बीज वाली फसलों की कटाई इस माह पूर्ण कर लें तथा बीजों को अच्छी तरह सुखाकर उनमें नमी की मात्रा लगभग 8 प्रतिशत तक कर लें।

बागवानी फसलें

नए बाग की स्थापना

नए बाग लगाने के लिए गड्ढों की खुदाई इस माह कर लें, ताकि तेज धूप के

अमरूद

अमरूद की सघन बागवानी वर्तमान में किसानों के बीच लोकप्रिय हो रही है, जिसमें पौधों को 1×2 मीटर दूरी पर लगाया जाता है। जिन नई शाखाओं पर पुष्प आ रहे हों, उनकी लगभग आधी लंबाई तक छंटाई कर दें। इससे वर्षा ऋतु की फसल कम होती है, जबकि रबी मौसम की फसल में वृद्धि होती है। पुष्पण अवस्था में 10 प्रतिशत यूरिया के घोल का 10-15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करने से जायद मौसम में 3-8 गुना तक अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। बहार नियंत्रण हेतु अप्रैल-मई में 10 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव फूलों पर करें। तेज धूप से झुलसने से बचाव के लिए पेड़ों के तनों एवं मुख्य शाखाओं पर कॉपर एवं चूने का लेप लगाना लाभकारी होता है।

प्रभाव से कीट एवं रोगकारकों का नियंत्रण हो सके। माह के अंत में इन गड्ढों को ऊपर की आधी उपजाऊ मृदा तथा आधी कम्पोस्ट खाद में क्लोरोपायरीफॉस मिलाकर भर दें।

सिंचाई एवं सामान्य प्रबंधन

ग्रीष्म ऋतु में तापमान अधिक होने के कारण बागवानी फसलों में उचित जल प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। अत: आवश्यकतानुसार 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें तथा समय-समय पर कटाई-छंटाई का कार्य भी करते रहें।

आम, अमरूद, पपीता, लीची, अंगूर, आंवला, बेर, नाशपाती, आलूबुखारा एवं नीबू आदि फलों के बागों में आवश्यकता अनुसार नियमित सिंचाई करें।

अंगूर

गर्मी के मौसम में अंगूर के बागों में लगभग एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई करें। एन्थ्रेक्नोज एवं सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा रोग की रोकथाम हेतु फाइटालोन या ब्लाइटॉक्स 0.3 प्रतिशत (लगभग 750 ग्राम/250 लीटर पानी प्रति एकड़) का छिड़काव मई के प्रथम सप्ताह में करें तथा 15 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार दोहराएं।

आम

आम में दासी मक्खी के नियंत्रण हेतु कार्बोरिल 0.2 प्रतिशत + शर्करा 0.1 प्रतिशत + मैलाथियॉन 0.1 प्रतिशत का मिश्रण बनाकर ट्रैप तैयार कर बाग में लटकाएं। पाउडरी मिल्ड्यू रोग के नियंत्रण हेतु घुलनशील गंधक 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें। कोइलिया फल विकार के नियंत्रण हेतु फल लगने के बाद बोरेक्स 1 प्रतिशत का छिड़काव करें। ऊतक क्षय रोग से बचाव हेतु 8 ग्राम बोरेक्स प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। फलों के झड़ने की समस्या कम करने हेतु एन.ए.ए. 20 पीपीएम का छिड़काव लाभकारी रहता है।

पुष्प एवं सगंधीय पौधे

रजनीगंधा

रजनीगंधा में एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई तथा दो सप्ताह के अंतराल पर निराई-गुड़ाई करते रहें। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में कंद रोपण का उपयुक्त समय फरवरी के अंतिम सप्ताह से जुलाई तथा पहाड़ी क्षेत्रों में मई-जून तक रहता है। रोपण 30-40 सें.मी. पंक्ति दूरी एवं 15-20 सें.मी. पौधे की दूरी पर करें। एक एकड़ क्षेत्र के लिए लगभग 50-60 हजार कंद पर्याप्त होते हैं। बेहतर पुष्प डंडियों के लिए 3-5 सें.मी. व्यास के स्वस्थ कंद लगाएं तथा रोपण के समय खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखें।

रजनीगंधा

गुलाब

गुलाब की फसल में आवश्यकता अनुसार नियमित सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करते रहें, जिससे पौधों की वृद्धि अच्छी बनी रहती है।

गुलाब

चाइना एस्टर, गेंदा एवं कॉरनेशन

इन फसलों में शीर्ष नोचन (पिंचिंग) का कार्य करें, जिससे अधिक शाखाएं विकसित होती हैं और पुष्प उत्पादन में वृद्धि होती है।

लिलियम

लिलियम की फसल में तैयार पुष्पों की तुड़ाई समय पर प्रारंभ कर दें, जिससे गुणवत्ता बनी रहती है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

यदि पुष्प फसलों में कीट या रोग का प्रकोप दिखाई दे, तो 0.2 प्रतिशत कैप्टॉन या बाविस्टिन का घोल बनाकर छिड़काव करें। कीट नियंत्रण हेतु 0.2 प्रतिशत रोगोर या मेटासिस्टॉक्स का घोल बनाकर 20-25 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना लाभकारी रहता है।

ग्लैडियोलस

ग्लैडियोलस की फसल में 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। कंद निकालने से 2-3 सप्ताह पहले सिंचाई बंद कर दें, जिससे कंदों का विकास बेहतर होता है और उनकी गुणवत्ता बनी रहती है।

लीची

लीची के फल सामान्यत: मई-जून में पककर तैयार हो जाते हैं। फल पकने पर उनका रंग गहरा गुलाबी या लाल हो जाता है। फल फटने की समस्या प्राय: मृदा में नमी की कमी एवं गर्म हवाओं के कारण होती है। इससे बचाव हेतु फल बनने से लेकर पकने तक हल्की सिंचाई करते रहें।

फल विगलन रोग से बचाव हेतु फल पकने से लगभग 20-25 दिनों पूर्व बाविस्टिन 10 ग्राम/10 लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

लीची

केला

केले की रोपाई हेतु 1.5 मीटर दूरी पर 50×50 सें.मी. आकार के गड्ढे तैयार करें। प्रत्येक गड्ढे में लगभग 10 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट खाद, 10 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन तथा 50 ग्राम फॉस्फोरस मिलाकर भरें।

रोपित पौधों में 25 ग्राम नाइट्रोजन पौधे से लगभग 50 सें.मी. दूरी पर गोलाई में देकर मृदा में मिलाएं तथा सिंचाई करें।

कागजी नीबू

कागजी नीबू में फल फटने की समस्या के नियंत्रण हेतु पोटेशियम सल्फेट का 4 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करना लाभकारी पाया गया है।

बढ़ती गर्मी और सूखे से कृषि पर गहराता प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव अब केवल मौसम की अनियमितताओं तक सीमित नहीं रह गए हैं, बल्कि ये सीधे कृषि उत्पादन, जल संसाधनों और ग्रामीण जीवन की स्थिरता को प्रभावित कर रहे हैं। हाल ही में प्रकाशित एक अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार, सदी के अंत तक विश्व की लगभग एक तिहाई आबादी को भीषण गर्मी और सूखे की संयुक्त मार झेलनी पड़ सकती है। यह स्थिति विशेष रूप से कृषि प्रधान और विकासशील देशों के लिए गंभीर चुनौती बन सकती है। यदि समय रहते जलवायु अनुकूल कृषि पद्धतियों और संसाधन संरक्षण उपायों को अपनाया नहीं गया, तो खाद्य सुरक्षा, किसानों की आय और पेयजल उपलब्धता पर व्यापक प्रभाव पड़ सकता है।

पिछले कुछ वर्षों में बढ़ती गर्मी और बार-बार पड़ रहे सूखे ने कृषि व्यवस्था के सामने नई चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। बदलती जलवायु परिस्थितियां अब सीधे फसल उत्पादन और जल संसाधनों की उपलब्धता को प्रभावित करने लगी हैं। अमेरिकन जियोफिजिकल यूनियन की रिपोर्ट के अनुसार, सदी के अंत तक दुनिया की लगभग 28 प्रतिशत आबादी यानी करीब 2.6 अरब लोग भीषण गर्मी और सूखे की संयुक्त घटनाओं से प्रभावित हो सकते हैं। ये घटनाएं 20वीं सदी की तुलना में लगभग पांच गुना अधिक बार देखने को मिल सकती हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार, जब ये दोनों परिस्थितियां एक साथ उत्पन्न होती हैं, तो उनका प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है, जिससे जल संकट, वनाग्नि की घटनाओं और फसल क्षति की आशंका बढ़ जाती है।

कृषि उत्पादन पर गहरा प्रभाव

भीषण गर्मी और सूखे की संयुक्त स्थिति का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ता है। उच्च तापमान के कारण फसलों की वृद्धि अवधि कम हो जाती है, परागण प्रक्रिया प्रभावित होती है तथा दानों का भराव कम होने लगता है, जिससे उत्पादकता घट जाती है।

सूखे की स्थिति में सिंचाई जल की उपलब्धता घटने से खरीफ एवं रबी दोनों

बदलती जलवायु-प्रभावित होती कृषि

मौसमों की फसलें प्रभावित होती हैं। विशेष रूप से धान, गेहूं, मक्का और दलहनी फसलों की उपज पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त, सब्जियों और बागवानी फसलों में भी गुणवत्ता एवं उत्पादन दोनों प्रभावित होते हैं।

जल संसाधनों पर संकट

गर्मी और सूखे की संयुक्त घटनाएं जल संसाधनों पर अतिरिक्त दबाव डालती हैं। भूजल स्तर तेजी से नीचे जाने लगता है तथा तालाब, झील और नहर जैसे परंपरागत जल स्रोतों में पानी की उपलब्धता कम हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल संकट गहराने लगता है, जिससे न केवल कृषि कार्य प्रभावित होते हैं, बल्कि दैनिक जीवन भी कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में जल संरक्षण और वर्षा जल संचयन की तकनीकों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव

फसलों की उत्पादकता में कमी आने से खाद्यान्न की उपलब्धता प्रभावित होती है, जिससे बाजार में कीमतों में अस्थिरता देखने को मिल सकती है। इसका सबसे अधिक प्रभाव छोटे और सीमांत किसानों तथा निम्न आय वर्ग के उपभोक्ताओं पर पड़ता है।

इसके साथ ही पशुपालन क्षेत्र भी प्रभावित होता है, क्योंकि उच्च तापमान के कारण पशुओं की उत्पादकता घटती है तथा चारे की उपलब्धता कम हो जाती है। रिपोर्ट के अनुसार, भीषण गर्मी और सूखे की संयुक्त घटनाओं का सर्वाधिक प्रभाव उन विकासशील देशों पर पड़ेगा, जिनका वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में योगदान अपेक्षाकृत कम है, लेकिन जलवायु परिवर्तन के प्रति उनकी संवेदनशीलता अधिक है।

इन देशों में तापमान से बचाव के संसाधनों और स्वास्थ्य सुविधाओं की सीमित उपलब्धता के कारण गर्मी से होने वाली फसल क्षति तथा खाद्य असुरक्षा की आशंका अधिक रहती है।

भीषण गर्मी और सूखे की संयुक्त घटनाएं भविष्य में कृषि और खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती बन सकती हैं। अत: आवश्यक है कि जलवायु अनुकूल कृषि तकनीकों को अपनाकर, जल संसाधनों का संरक्षण करते हुए और नीतिगत स्तर पर समन्वित प्रयासों के माध्यम से इस चुनौती का प्रभावी समाधान खोजा जाए, ताकि किसानों की आजीविका सुरक्षित रह सके और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। ■

समाधान

कृषि क्षेत्र में निम्न उपाय अपनाकर जोखिम को कम किया जा सकता है:

- सूखा एवं गर्मी सहनशील किस्मों का चयन
- सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों (ड्रिप एवं स्प्रिंकलर) का उपयोग
- वर्षा जल संचयन और जल संरक्षण उपायों को बढ़ावा
- फसल विविधीकरण अपनाना
- कृषि वानिकी प्रणाली का विस्तार

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹50

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा